सिद्ध योग

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन
सँवाई, आगरा

वर्ष १५

अंक ८

प्रकाशक
श्री सिद्धगुफा, सवाई

इस अंक में—

❀ काल-महिमा १

❀ समाधि प्राप्ति के छः अचूक साधन २
योग-योगीश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

❀ योगमन: स्थिति तर एवं लाभ ६
डा० श्री विजयसिंह

❀ सूर्य किरण-चिकित्सा से स्वास्थ्य लाभ १५
श्री ब्रह्मचारी ओमप्रकाश

❀ मन्दिर श्री जगन्नाथ जी और कबीर की योग शक्ति २१
श्री शिवराम सागर

❀ गीता का केन्द्रीय विषय २५
श्री शिव नारायण लाल

❀ योगेश्वर चरित्र माला ३०
श्री केशव उपाध्याय

❀ सर्व-दुःख-नाश-योगम् ३५
चाणक्य-नीति

❀ जीवनी शक्ति और उसके वास्तविक कार्य ३७
श्री योगी हृदयनारायण जी

❀ नमन शत बार है ४०
स्व० श्री बनवारीलाल चतुर्वेदी

❀ [illegible] ४५
श्री [illegible]

संयुक्त सम्पादक
'दिव्य'

नवम्बर १९८५

वार्षिक मूल्य [illegible] रुपया । इस अंक का [illegible]

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुरु योग प्रशिक्षण केन्द्र, चवाई (एत्मादपुर) आगरा।

वर्ष १८ | अङ्क ८ | नवम्बर १९८५

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्धं स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्भव विरक्तो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थं बहुविमर्दं योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥

❀ काल-महिमा ❀

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमारोहन्ति कवयो विपश्चितः, तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा॥

(अथर्व० १९/५३/१)

शब्दार्थ—(सप्तरश्मिः) सात रश्मियों वाला (सहस्राक्षः) हजारों धुरों को चलाने वाला (अजरः) कभी भी जीर्ण बुड्ढा न होने वाला (भूरिरेताः) महाबली (कालः अश्वः) समय रूपी घोड़ा (वहति) चल रहा है—संसार रथ को खींच रहा है (विश्वा भुवनानि) सब उत्पन्न वस्तुएँ, सब भुवन (तस्य) उसके (चक्राः) चक्र हैं-उसके द्वारा चक्रवत् घूम रहे हैं। (तम्) उस घोड़े पर (विपश्चितः) ज्ञानी और (कवयः) क्रान्तदर्शी लोग ही (आरोहन्ति) असवार होते हैं।

भावार्थ—काल रूपी महाबली घोड़ा चल रहा है। वह सब संसार को खींचे लिये जा रहा है। इस विश्व के सब प्रकार के सात काम कर रहे हैं। वे ही सात रश्मियाँ (रश्मियां) हैं जिन से यह विश्व उस कालरूपी घोड़े से जुड़ा हुआ है। काल की महाशक्ति से जुड़कर इस ब्रह्माण्ड के सब भुवन, सब मनुष्य, सब प्राणी, सब उत्पन्न वस्तुएँ चक्र की तरह घूम रही हैं। इस काल-देव को मेरे कोटि प्रणाम हैं।

हमारा विशेष लेख—

समाधि प्राप्ति के छः अचूक साधन

— योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग दर्शन के समाधि पाद में भगवान श्री पतञ्जलिदेव जी महाराज ने छः इस प्रकार के साधनों का वर्णन किया है जो बहुत ही सरल है एवं हर व्यक्ति के लिए सरलतम एवं सुख साध्य है। हमने अपने लेखों में स्थान-स्थान पर यह संकेत बहुत बार किया है कि संसार में जन्म लेने वाले व्यक्ति अपने-अपने अधिकार भेद से सभी योग के विद्यार्थी बन सकते हैं किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि सर्व समर्थ एवं विज्ञ गुरु अपने साधक समुदाय में से जो व्यक्ति जिस साधन का अधिकारी है उसके लिए वैसे ही साधनों का चयन करें। एक प्राथमिक पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी के सामने यदि उच्च कक्षा का कोर्स को रख देवें तो वह उनकी मूर्खता होगी और उनको वह छात्र किसी भी प्रकार का कोई लाभ नहीं उठा सकेगा। यही कारण है कि हमारे पूर्वाचार्यों ने अधिकार भेद का वर्णन किया है, किन्तु साथ ही प्राणि मात्र के हित के लिए ऐसे साधनों का प्रतिपादन भी कर दिया जिनको हर व्यक्ति सरलता से अपना कर समाधि मार्ग को पार कर सकता है।

भगवान पतञ्जलिदेव ने योगी को कैसे रहना चाहिए जिससे उसके मन में पूर्ण प्रसन्नता बनी रहे। यह सब बातें समझा करके समाधि प्राप्ति के लिए प्रथम साधन में प्राणायाम का आदेश किया। श्री पतञ्जलि जी महाराज ने समाधि प्राप्ति के साधनों में सर्व प्रथम प्राणायाम का आदेश किया और उसकी विधि भी लिखी जो इस प्रकार है—

प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य ।

अर्थात् प्राणायाम करने से भी मनुष्य अपने मन को एकाग्र कर लेता है। श्री व्यासदेव जी महाराज ने इस सूत्र के नीचे अपने भाष्य की पंक्तियों में प्राणायाम को इस प्रकार समझाया है—

कोष्ठ्यस्य वायोर्नासिका पुटाभ्यां प्रयत्नविशेषाद् वमनं प्रच्छर्दनं, विधारणं=प्राणायामः, ताभ्यां वा मनसः स्थितिं सम्पादयेत् ।

अर्थात् शरीर के भीतर के वायु को प्रयत्न विशेष के साथ बाहर निकाल देने को प्रच्छर्दन कहते हैं और ठीक इसी प्रकार से बाहर की वायु को हृदय में धारण करके रोक लेने का नाम विधारण है। इन दोनों शब्दों का

अर्थ बाह्य कुम्भक और आभ्यान्तर कुम्भक है। यह प्राणायाम करने वाले साधकों के लिए साधारण संकेत है। प्राणायाम विशेष विधि कितनी मात्रा से कैसे पूरक करें और कितनी मात्रा से कैसे कुम्भक करें, और कितनी मात्राओं से कैसे प्राण का रेचन करें। यह सब विधियां एवं साधना प्रकार प्राणायाम के जिज्ञासु विद्यार्थियों को श्री गुरुदेव की शरण में जाकर नियमानुसार सीख लेना चाहिए यदि कोई व्यक्ति प्राणायाम की विशिष्ट विधि को अनुभवी गुरु के द्वारा सीखकर साधना करते हैं तो वे इस साधना के उत्तम परिणाम को भी पा जाया करते हैं। प्राणायाम का उत्तम फल है प्रकाशावरण क्षय। अर्थात् प्राणायाम करने से अंधकार की निवृत्ति होकर योगी दिव्य प्रकाश का भागी बन जाया करता है और प्रकाशावरण क्षय हो जाने के बाद योगी को स्वतः ही समाधि सिद्ध हो जायगी। यह साधन हठयोग का साधन है इसलिए पूर्ण उत्तम अधिकारी, दृढ़ निष्ठावान, अतुलित वीर्यवान, अखण्ड ब्रह्मचारी को ही करना चाहिए। यदि प्राणायाम आदि की कठिन साधना को हीन वीर्य करता है और उसका इन्द्रियों पर भी कोई नियंत्रण नहीं है तो उसका परिणाम यह निकलेगा कि वही प्राणायाम जिसके द्वारा साधक ने समाधि प्राप्त करनी थी, उस हीन वीर्य वासनाभोगी साधक के नाश का कारण भी बन जाएगा। हमने अपने योग प्रचार क्षेत्र के अन्दर ऐसे कितने ही साधकों को देखा है जिन्होंने अनधिकार पूर्वक प्राणायाम किया और साथ ही में विषयों के उपभोक्ता भी रहे। परिणाम यह निकला कि ऐसे लोग अपने शारीरिक स्वास्थ्य को भी खो बैठे। दोनों फेफड़े खराब हो गए और हठात् मानो आपको मौत के मुख में झोंक बैठे। इसलिए साधक को चाहिए कि प्राणायाम की शिक्षा किसी सर्व समर्थ उत्तम अनुभवी गुरु से प्राप्त करे। संयम नियम से रहकर धैर्य पूर्वक इस साधना को करें ताकि समाधि द्वार तक पहुंच सकें। इसी कारण से हमने अपने इस लेख में प्राणायाम की विधि शिक्षा का दिग्दर्शन नहीं कराया है। यद्यपि यह तो सत्य ही है कि मन को एकाग्र करने के लिए एवं समाधि स्थिति सम्पादन करने के लिए प्राणायाम एक अचूक साधन है। इसके बाद भगवान पतञ्जलिदेव मन की स्थिति का सम्पादन करने के लिए विषयवती प्रवृत्ति का उपदेश कर रहे हैं। सूत्र निम्नांकित है—

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थिति निबन्धनी।

अर्थात् साधक के मनमें किसी भी प्रकार से यदि विषयवती दिव्य प्रवृत्ति उदय हो जाती है तो वह मन के रोकने का एक खास कारण बन जाती है। विषयवती प्रवृत्ति कैसे और कहां पैदा होती है वह सब इस सूत्र पर भाष्य लिखते

हुए श्री व्यासदेव जी महाराज ने भली प्रकार स्पष्टीकरण के साथ समझा दिया है। यथा ये व्यास-भाष्य की पंक्तियाँ—

नासिकाऽग्रे धारयतोऽस्य या दिव्यगन्धसंवित् सा गन्धप्रवृत्तिः, जिह्वाऽग्रे दिव्यरससंवित्, तालुनि रूपसंविद्, जिह्वामध्ये स्पर्शसंविद्, जिह्वामूले शब्दसंविद्, इत्येताः प्रवृत्तय उत्पन्नाश्चित्तं स्थितौ निबध्नन्ति, संशयं विधमन्ति, समाधिप्रज्ञायाञ्च द्वारीभवन्तीति, एतेन चन्द्रादित्यग्रहमणिप्रदीपरत्नादिषु प्रवृत्तिरुत्पन्ना विषयवत्येव वेदितव्या, यद्यपि हि तत्तच्छास्त्रानुमानाचार्योपदेशैरवगतमर्थतत्त्वं सद्भूतमेव भवति, एतेषां यथाभूतार्थप्रतिपादनसामर्थ्यात्, तथाऽपि यावदेकदेशोऽपि कश्चिन्न स्वकरणसंवेद्योभवति तावत्सर्वं परोक्षमिवापवर्गादिषु सूक्ष्मेष्वर्थेषु न दृढां बुद्धिमुत्पादयति तस्माच्छास्त्रानुमानाचार्योपदेशोपोद्बलनार्थमेवावश्यं कश्चिद्विशेषः प्रत्यक्षीकर्त्तव्यः, तत्र तदुपदिष्टार्थैकदेशस्य प्रत्यक्षत्वे सति सर्वं सुसूक्ष्मविषयमप्यापवर्गात्सुश्रद्धीयते, एतदर्थमेवेदं चित्तपरिकर्म निर्दिश्यते, अनियतासु वृत्तिषु तद्विषयायां वशीकारसंज्ञायामुपजातायां समर्थं स्यात्तस्य तस्यार्थस्य प्रत्यक्षीकरणायेति, तथा च सति श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधयोऽस्याप्रतिबन्धेन भविष्यन्तीति।

अर्थात् व्यास-भाष्य की इन पंक्तियों में जहाँ-जहाँ ध्यान करने से जो-जो विषयवती प्रवृत्ति पैदा होती है उसका दिग्दर्शन कराया है। यह तो हर व्यक्ति जानता ही है कि हमारी पाँचों ज्ञानेन्द्रिय हम सभी के मनों को विषयों की ओर खींचती रहती हैं किन्तु एक सिद्धान्त का विषय हम पहले समझा चुके हैं कि जिन-जिन विषयों को हम आँखों से देखते हैं कानों से सुनते हैं, जिह्वा से रस लेते हैं, नासिका से गन्ध लेते हैं एवं त्वचा से स्पर्श सुख अनुभव करते हैं। यदि ईश्वर की परम कृपा से गुरुशरणागत साधक इन सभी ज्ञानेन्द्रिय के विषयों को अन्तरजगत में देखने का प्रयत्न करता है और वह रूप रस आदि अनुभव में आ जाते हैं तो इन सभी बातों को विषयवती प्रवृत्ति कहा है। अन्तर केवल मात्र इतना ही है कि अभी तक हम बहिर्मुखता से वासनिक विषयों के रस को इन्द्रियों के बाहरी भाग के द्वारा देखते सुनते और भोगते थे, अब अन्तर्जगत में प्रवृत्ति हो जाने के कारण वही विषयवती प्रवृत्ति मन की एकाग्रता का कारण बन जाएगी क्योंकि अभी तक हमारा मन बाह्य जगत् में इन्द्रिय जन्य विषयों का भोक्ता रहा है। वासनिक सुख की उसको अनुभूति है एक मनुष्य किसी भी प्रकार के वासनिक सुख को अनुभव

करता है उस समय उसका मन वासना के भोग काल में उस विषय में एकाग्र अवश्य हो जाता है। यद्यपि वह वासनिक सुख क्षणिक है किन्तु क्षण भर के उस सुख का उपभोग करता हुआ मनुष्य वाह-वाह ! करता है और यह कहता है कि अरे भाई आज तो मुझे बहुत ही आनन्द आया। इसलिए विषयों के उपभोक्ता इस मन को रस- प्रवृत्ति है। वह वासनिक रस को चाहता है। हमारे आचार्यों ने इसी बात के स्पष्टीकरण के लिए विषयवती प्रवृत्ति का संकेत किया। इस बात को उदाहरण के साथ इस प्रकार समझ लेना चाहिए जैसे कोई रोग पीड़ित व्यक्ति कटु औषधि को खाने में हिचकिचाता है और नहीं खाना चाहता और यदि उसी औषधि को मीठा आवरण देकर खिला दिया जाए तो वह प्रेम पूर्वक खा लेता है। पेट में किसी बहाने उस औषधि के पहुँच जाने पर वह उस रोग का शमन तो अवश्य करेगी ही किन्तु खाने वाले रोगी को कटुता का अनुभव नहीं होगा। इसी कारण को मध्यदृष्टि रखकर के हमारे योगाचार्यों ने अपने ऊँचे-ऊँचे अनुभवों के साथ विषयवती प्रवृत्ति रसवती प्रवृत्ति या विशोका ज्योतिष्मती प्रवृत्ति आदि-आदि प्रवृत्तियों का उपदेश किया जिससे इन्द्रिय के बाहरी जगत भाग में घूमने वाला मन अन्तर्जगत में उसी रस को कुछ विलक्षणता से पाकर वहाँ एकाग्र हो जाए और लम्बे समय तक किया हुआ विषयवती या रसवती का अभ्यास शनैः शनैः निरोधाभिमुख होता चला जाएगा। इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुये उन प्रवृत्तियों को समझाते हैं जिनमें एकाग्र हुआ मन निरोधाभिमुख हो जाए। उन्होंने सबसे पहली बात नासिकाग्र ध्यान करने की बात बतलाई। नासिकाग्र ध्यान करने का उपदेश अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने भी 'सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्' कह करके किया है अर्थात् मनुष्य इधर-उधर चारों ओर घूमने वाले अपने मन को चारों ओर ओर से हटा करके नासिका के अग्रभाग में लगा दे। ऐसा करने से गन्धवती प्रवृत्ति कुछ दिन के लगातार अभ्यास करने के बाद अवश्य बन जाएगी और उस साधक को दिव्य सुगन्ध स्वतः ही हर समय आती रहने लगेगी। इसको गन्धवती प्रवृत्ति कहते हैं। दूसरे शब्दों में यह प्रवृत्ति गन्ध रूप से विषयवती है। इसी प्रकार से जो अभ्यासी लोग जिह्वा के अग्रभाग में ध्यान करते हैं उनको धीरे-धीरे दिव्य रसों की अनुभूति स्वतः ही होने लगती है। इसको रसवती प्रवृत्ति कहते हैं। जो लोग तालु के मध्यभाग में ध्यान करते हैं उनको उस अभ्यास काल में बड़े-बड़े दिव्य रूप दीखने लगते हैं इसका नाम रूपवती प्रवृत्ति है। जो लोग जिह्वा के मध्य भाग में ध्यान करते हैं उनको बड़े बड़े दिव्य स्पर्शों का अनुभव होने लगता है। इसके अतिरिक्त जो लोग जिह्वा के मूल भाग में संयम करते हैं, उनको बड़े बड़े दिव्य शब्द सुनाई देने लगते

है। यह इस प्रकार की सभी प्रवृत्तियें निरन्तर अभ्यास करते हुए साधक के मन में उत्पन्न हो कर के योगी के चित्त को एकाग्र कर देती है और सभी प्रकार के संशयों का नाश भी कर देती है और समाधि प्रज्ञा के द्वार को खोल देती है। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा सूर्य अन्य दूसरे ग्रह मणि और प्रदीप रत्न आदियों के ध्यान करने पर जो प्रवृत्ति पैदा होती है। यह सब की सब प्रवृत्तियें विषयवती ही जाननी चाहिए। यद्यपि यह ठीक है कि शास्त्र अनुमान और अर्थ के वेत्ता आचार्यों के द्वारा अर्थ तत्व बिल्कुल सत्य ही होता है क्योंकि यह सब के सब यथार्थ वक्ता होते हैं। यथार्थ अर्थ को समझाने का सामर्थ्य वाले होते हैं। किन्तु फिर भी साधक को चाहिए कि अपने अभ्यास के बल से इनमें से किसी अर्थ तत्व का प्रत्यक्ष जरूर करें। इस विषयवती प्रवृत्ति ध्यान कर वास्तविक अर्थतत्व को प्रगट करने वाला योगी शंकित नहीं रहेगा। और योगाचार्यों के द्वारा उपदिष्ट सूक्ष्म अर्थ तत्व में उसकी पूर्ण श्रद्धा हो जाएगी इसी कारण से यह सब चित्त के अवलम्बनीय विषय बतलाए गये हैं। जो साधक चञ्चल चित्त-वृत्तियों पर अधिकार प्राप्त कर लेता है और वशीकार संज्ञा को पा जाता है तो वह उस उस अर्थतत्व को समझने वाला बन जाता है। ऐसे साधक के लिए श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि आदि उसकी परम सहायक बन जायेगी।

इसी प्रकार से विषयों का ज्योतिष्मती प्रवृत्ति भी मन के बांधा लेने में पूरी-पूरी सहायक होती है। भगवान पतंजलिदेव ने कहा है—

विशोका वा ज्योतिष्मती

इस सूत्र पर व्यास भाष्य—

प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थिति निबन्धनी त्यनुवर्त्तते, हृदयपुण्डरीके धारयतो या बुद्धिसंवित्—

बुद्धिसत्त्वं हि भास्वरमाकाशकल्पं, तत्र स्थिति वैशारद्यात्प्रवृत्तिः सूर्येन्दु-ग्रहमणिप्रभारूपाकारेण विकल्पते, तथा-ऽस्मितायां समापन्नं चित्तं निस्तरङ्गमहो-दधिकल्पं शान्तमनन्तमस्मितामात्रं भवति यत्रेदमुक्तं 'तमणुमात्र (१) मात्मानमनु-विद्यास्मीत्येवं तावत्संप्रजानीते' इति, एषा द्वयीविशोका विषयवती, अस्मित-मात्रा च प्रवृत्तिर्ज्योतिष्मतीत्युच्यते, यया योगिनश्चित्तं स्थिति पदम् लभत इति।

अर्थात् एक योगी जब हृदय कमल में ध्यान करता है तब आकाश के मानिन्द चमकता हुआ बुद्धि सत्व चन्द्रमा ग्रह मणिप्रभा के रूप से अनुभूति में आता है और इस ही प्रकार से अस्मिता में लगा हुआ चित्त निस्तरंग समुद्र के मानिन्द अस्मिता मात्र से अनुभव में आया करता है। इस प्रकार से यह प्रमाण रूप से कहा भी गया है। हृदय पुण्डरीक भेद आकाश

के मानिन्द देदीप्यमान तेज का ध्यान करता हुआ योगी यह अनुभव करता है कि यह सब मैं ही हूँ। यह दोनों प्रकार की विषयवती अथवा अस्मिता नाम्ना ज्योतिष्मती कही जाती है। इसका ध्यान करने वाला योगी स्थिति पद को पा जाया करता है। इसके अतिरिक्त—

वीतरागविषयम् वा चित्तम्। वीतरागचित्तालम्बनोपरक्तम् वा योगिनश्चित्तम् स्थितिपदम् लभत इति।

अर्थात् वीतराग पुरुषों के चित्त में उपरक्त हुआ चित्त समाधि स्थिति को पा जाया करता है। वीतराग पुरुष सब प्रकार से परिपूर्ण सर्व-सामर्थ्य सम्पन्न योगेश्वर ही हुआ करते हैं। एक साधारण साधक भगवान श्रीकृष्ण, भगवान श्री शिव, भगवान श्री राम कपिलादिक सिद्ध महामाया भगवती दुर्गा कपिलादिक मुनि यह सभी लोग वीतराग हैं। इनके स्वरूप का ध्यान करता हुआ योगी साधक यदि इन लोगों के मन बुद्धि चित्त अहंकार में अपने मन बुद्धि चित्त अहंकार को विलीन कर देता है और इन्हीं लोगों में तदाकार वृत्ति धारण करके समाधिस्थ होकर बैठा रहता है तो जैसी स्थिति में यह लोग स्वयं रहा करते हैं वही स्थिति योगी को स्वतः ही उपलब्ध हो जाती है। यह एक नियम की बात है छोटी शक्ति बड़ी शक्ति में विलय हुआ करती है जल की एक बूंद समुद्र में पड़कर समुद्र हो जाया करती है। साधक का मन परमित शक्ति वाला है। वीतराग पुरुषों के बड़ी शक्ति वाले मन में अपने मन को बुद्धि में बुद्धि को चित्त में चित्त को एवं अहङ्कार में अहङ्कार को यदि योगी विलीन कर देता है, और तद्रूपता को पा जाता है तो वह इन लोगों के स्वरूप में अपने स्वरूप को विलीन करके समाधिस्थ होकर के बैठा जाता है तो जिस प्रकार से यह लोग स्वयं निर्बीज समाधि में समाधिस्थ रहते हैं उसी प्रकार वह योगी भी इनके स्वरूप में अपने स्वरूप को विलय करके निस्त्रैगुण्य स्थिति को पा जाएगा। इसके बाद समाधि प्राप्ति का पाँचवां उपाय स्वप्न निद्रा ज्ञानावलम्ब है। भगवान पतञ्जलिदेव के शब्दों में पढ़िए—

स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा।

स्वप्नज्ञानालम्बनं निद्राज्ञाना लम्बनं वा तदाकारं योगिनश्चित्तं स्थितिपदम् लभत इति।

अर्थात् योगी स्वप्न ज्ञान का सहारा लेकर के एवं निद्राज्ञान का सहारा लेकर भी समाधि स्थिति को पा जाया करता है। जिस प्रकार से रात्रि में सोया हुआ एक व्यक्ति कोई स्वप्न देखता है और उसमें वह देखता है कि वह कहीं देश विदेश में कहीं गया हुआ है। वहां के मनुष्यों से वह मिल रहा है। बाजारों को देख रहा है। उसका वह स्वप्न में होने वाला ज्ञान उसके आधुनिक इस जीवन से

बिल्कुल भिन्न है। इसी प्रकार से एक योगी ध्यानाभ्यास में बैठ कर कल्पित स्वप्न लेता है। वह सोचता है कि मैं कैलाश पर्वत पर गया हुआ हूँ। वहाँ पर विश्वात्मा भगवान शङ्कर बैठे हुये हैं उनके वामांग में जगदम्बा पार्वती जी विराजमान हैं। हिमालय के सिद्ध लोग आ आ करके उनकी आरती पूजन कर रहे हैं इस प्रकार की कल्पना करके जो भी साधक लोग मानस पूजन आदि करते हैं वे सहज में ही स्वप्न ज्ञानावलम्बी बन जाते हैं और शनैः शनैः उनको भी स्वतः समाधि होने लगती है। इसी प्रकार कुछ लोग निद्राज्ञान का अवलम्ब लेते हैं। निद्रा, अभाव प्रत्यय का अवलम्ब लेकर स्वरूप दिखाने वाली एक वृत्ति तो है ही किन्तु सुषुप्ती में मनुष्य सभी प्रकार के बाह्याभ्यन्तर ज्ञानों से शून्य जैसा हो जाता है, ऐसे योगाभ्यासियों को ध्यान में अपने मन को निर्विषय बना देना पड़ता है। निद्रा ज्ञान का अवलम्बन लेने वाला साधक ध्यानम् निर्विषयं मनः अर्थात् निद्रा ज्ञान का अवलम्ब लेने वाला योगी अपने मन को बिल्कुल-बिल्कुल चिंतन रहित करदे। जिस प्रकार से सुषुप्ति में कुछ भी नहीं सोचता, कुछ भी नहीं जानता। मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ, कैसा हूँ, यह भी ज्ञान उसको नहीं रहता न उसे अपने घर, द्वार, वस्तु व स्त्री आदि ही याद आते हैं। तब न किंचित काल में निर्विकल्प वाली स्थिति को पा जाया करता है इसी का नाम निद्रा ज्ञानालम्ब है। योगाभ्यासियों के लिए यह एक बहुत ही उत्कृष्ट एवं सरलतम् साधन है। सांसारिक लोगों के एक और सरलतम् साधन का भगवान पतञ्जलिदेव उपदेश कर रहे हैं।

यथाऽभिमतध्यानाद्वा।

यदेवाभिमतं तदेव ध्यायेत्, लब्ध-स्थिति कमन्यत्रापि स्थितिपदम् लभत इति।

अर्थात् जिस व्यक्ति का मन जिसको चाहता हो उसका ध्यान करने से भी जल्दी इस स्थिति को पा सकता है। क्योंकि योगी का मन उसमें पहले से अनुरक्त होता है। जिस वस्तु में हमारा राग है उसका ध्यान किया जाए तो एकाग्रता सहज में ही हो जाया करती है। रहीम, रसखान आदि मुसलमान कवि इसी विषय के उपलब्ध उदाहरण हैं। रसखान संसार के लड़कों में आसक्ति रखता था। भगवान श्रीकृष्ण का स्वरूप उसे दिख-लाया गया उसने उनका नाम पता पूछा। एक बालक समझ करके उनकी तलाश करते जो वृन्दावन के जंगलों में घूमता रहा। उसका परिणाम यह निकला कि वह एक आदर्श भक्त बन गया। भगवान श्रीकृष्ण की सत्ता को समझ गया और अपने आपको उनके चरणों पर न्यौछावर कर डाला। और भी अनेकानेक इस प्रकार के उदाहरण हैं। मैं अधिक विषय विस्तार नहीं करना चाहता। किन्तु साधकों के लिए इतना ही पर्याप्त है। भगवान श्री पतञ्जलिदेव जी महाराज ने समाधि प्राप्ति के लिये इन अत्यन्त सरलतम् साधनों का इस प्रकार से उपदेश किया जिनमें से किसी एक का अवलम्ब लेकर साधक समाधि स्थिति को पा सकता है और अपने आप को कृतार्थ बना सकता है। ❁❁

—卐 योगमनः स्थिति वर एवं शाप 卐—

डा० श्री विजयसिंह, गोरखपुर

मानव इतिहास उत्थान-पतन की ही गाथा है। पुरुषार्थ एवं प्रारब्ध का खेल व्यक्ति ही क्यों समाज तथा राष्ट्र को भी प्रभावित करता आ रहा है। लौकिक जीवन में पुरुषार्थ तथा प्रारब्ध का परिणाम कहीं बिल्कुल भिन्न कहीं दोनों का समन्वित रूप और कभी प्रारब्ध की ही अपूर्व महिमा दिखाई पड़ती है, परन्तु आध्यात्मिक जीवन जीने वालों के लिये पुरुषार्थ और प्रारब्ध का स्वरूप अत्यन्त जटिल हुआ करता है। पुरुषार्थ यहाँ मोक्ष की प्राप्ति या यों कहें कि सदैव आवागमन की चक्र शृंखला को तोड़ना ही है। अतः प्रारब्ध (पूर्व संस्कार) कभी सहायक और कभी अन्तराय रूप से साधक की साधना में प्रकट होता रहता है। आत्मिक उत्थान के पथ में सहायक स्थितियाँ—देव, ऋषि, परम आत्मीय-जनों के शुभेच्छा अथवा वर से सहज सुलभ हो जाती है। वहीं क्रूर कर्मों के सम्पादन अथवा पूर्व क्लिष्ट उग्र संस्कारों के भुगतान रूप शाप पतन का भी कारण बन जाता है।। हमारे वाङ्मय वर-शाप की अद्भुत अलौकिक कथाओं से भरे हुये हैं।

संत सिद्ध, नाना सिद्ध पुरुषों द्वारा कथित वाणी हूबहू घटित हुआ करती है किसी ने कहा है—

सन्त वचन पलटै नहीं,
पलट जाय ब्रह्माण्ड।

ऐसी परिस्थितियाँ भी कभी-कभी पौराणिक कथाओं में आती हैं, जब दो विपरीत तपः पुंज, योग युक्त संकल्प-सिद्ध मनः स्थितियां आपस में टकराई हैं। आश्चर्य और विचारणीय विषय तो यह है कि वर-शाप के चक्कर में ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी चक्कर लगाते हुये नाना प्रकार की क्रीड़ा करते हैं तथापि इन अनादि सिद्ध योगियों की बात ही कुछ और है। उनके ऊपर वही सिद्धान्त लागू नहीं होते जो साधारण बद्धकोटि जीवों पर होते हैं।

कभी किसी व्यक्ति ने परम कल्याणार्थ सद्गुरु जी से पूछा था कि—हे प्रभो! कपिल भगवान तथा अनेक ईश्वर कल्प महापुरुष भी काम, क्रोध के अधीन होकर शाप-वर देते हुये पुराणों में वर्णित हैं इसका रहस्य क्या है? मेघ सी गम्भीर वाणी में श्री प्रभुजी ने कहा—देखो! एक कठिन जाल के अन्दर साधारण व्यक्ति फांस दिया जावे तो वह सर्वथा बद्ध रहकर कष्ट ही कष्ट पाकर दुर्गति को प्राप्त होगा। परन्तु यदि कोई ऐसा व्यक्ति जाल में फँसा दीजे जिसके पास सुतीक्ष्ण शस्त्र हो

बीमार हो जाने काटने का, तो उसका आक्रान्त होना स्वाभाविक मात्र है। वह जब चाहे बन्धन मुक्त अपने को कर लेगा। बात समझ में आई न। जो अनादि सिद्ध, तपयुक्त, योगैश्वर्य सम्पन्न महापुरुष हैं उनके चरित्र खेल जैसे हैं। त्रिगुणात्मक प्रकृति-शक्ति का महत्व क्या है? माया कितनी बलवती है? ईश्वर सहचरी चिदात्मिका कितनी समर्थ है यह बात इन लीला कथाओं से स्पष्ट हो जाती है योगेश्वर श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है—

"मम माया दुरत्यया"।

पहले ही हमने कहा है कि लौकिक जीवन और पारलौकिक जीवन को अध्यात्म में समान भाव से महत्व दिया गया है। परन्तु साधना की दृष्टि में पारलौकिक जीवन का महत्व लौकिक जीवन से अधिक ही आँका जाता है। बड़े-बड़े राजर्षियों ने लौकिक जीवन में प्राप्त यश ऐश्वर्य को त्याग कर समय रहते अपने आध्यात्मिक जीवन की नींव को सुदृढ़ कर लिया तथा मोक्ष सोपान की चरम स्थिति को भी प्राप्त हुये। मूलतः वर व शाप दोनों ही जीव की परमगति में सहायक हो सिद्ध होने वाली घटनायें हैं। ऐसा बताया गया है कि वर द्वारा व्यक्ति के संचित संस्कार कोष में जन्म-जन्मान्तरों से एकत्रित सकाम पुण्यबीज जो कालान्तर में न जाने कब भुगतान में आते उन्हें वरदाता द्वारा सुनियोजित करके शीघ्र ही फलदायी बना दिया जाता है। इसी प्रकार क्लिष्ट कर्म फल संचय द्वारा ही शाप का नियोजन सम्भव हो पाता है। जिससे जो बुरे परिणाम शनैः शनैः अनेकों जन्म व योनियों में जाकर भुगतने होते, वे शाप: प्रकट एवं संघटित होकर क्लिष्ट उदार संस्कारों का रूप ले लेते हैं।

वर- शाप का भी तत्वीकरण:—

योग वासिष्ठ में भगवान राम ने महर्षि वशिष्ठ से एक विचित्र प्रश्न सत्य संकल्पता के बारे में पूछा है। उन्होंने कहा—भगवन्! आपने ऐसा बताया कि सत्य संकल्प योगी को जाग्रत, सुषुप्ति, सभी दशाओं में जो विचार मन में उठते हैं वे सत्य रूप ही होते हैं। (ऋतम्भरा प्रज्ञा जैसी स्थिति) फिर यदि दो सत्य संकल्प वाले सिद्ध परस्पर विरोधी संकल्प करें तो वैसी अवस्था में क्या होगा? किसी न किसी का संकल्प मिथ्या सिद्ध होगा अथवा दोनों के संकल्प मिथ्या होंगे। इस विषय में आपका मत क्या है? भगवान वशिष्ठ ने कहा—राम! दो समान पौरुष, वीर्य, कला, सिद्ध सम्पन्न, योद्धा युद्ध में तत्पर हों तो कौन जीतेगा इस बात का निर्णय अभ्यास की सुदीर्घता तथा आभ्यान्तरिक निष्ठा पर निर्भर करेगा। जो जितना अधिक अभ्यासी होगा उसी की जीत होगी। यही बात दो सत्य संकल्पी सिद्धों के विपरीत संकल्पों के बारे में जानना चाहिये।

उपरोक्त तथ्य के परिप्रेक्ष्य में किसी सिद्ध

द्वारा दिया गया वर अथवा श्राप का परिणाम सर्वथा अथवा न्यूनाधिक रूप में गौण या प्रभाव किसी अन्य महत्तर महाशक्ति द्वारा किया जा सकता है। इस बात को पूरी तरह समझने हेतु परम पूज्य ब्र० गोपालानन्द जी की आत्म-कथा में वर्णित घटना को ध्यान में रखना होगा। जिस समय ब्रह्मचारी जी अपने पूर्व-वर्ती हठयोगी महात्मा को छोड़कर परम-करुणार्णव सिद्ध सिद्धेश्वर श्री महाप्रभु राम-लाल जी के शरणागत हो दिव्य ध्यान स्थिति को प्राप्त हुये उस समय ध्यान में एक दिन क्रोधावेश में आकर उनके हठयोगी महात्मा ने कहा—तूने हमारे बताये मार्ग का त्याग किया है अतः तेरे रोगी बिगड़ जायेंगे, तू दारिद्र जीवन व्यतीत करेगा और अल्प आयु भोगी होगा। उसी दिन से रोगी बिगड़ने लगे। बाहर में अपयश फैलने लगा। ब्रह्मचारी जी ने श्राप का ध्यान कर श्री महाप्रभु जी के अभय चरण-कमलों में पत्र लिखे, उसका उत्तर श्री प्रभुजी ने इस प्रकार अभयदायी शब्दों में श्राप मोचन करते हुये वर रूप में दिया—चिरंजीव ! जो कैलाश छोड़कर व गणपति लोक को त्यागकर हर समय तुम्हारे साथ रहते हैं इतने पर भी तुम श्राप का भय करते हो। जब तुम्हारे पास हमारा यह पत्र पहुँचेगा उसी समय से दवाइयों में चौगुनी शक्ति हो जावेगी और रोगी सब ठीक हो जायेंगे, जीवन भर तुम स्वस्थ रहोगे, यदि तुम्हारी स्वतः इच्छा हुई तो बड़े धनिक बन सकते हो, तुम्हें सद्गति प्राप्त होगी। परम अहैतुकी सार्वभौम श्री महाप्रभु जी ने अपनी कृपा पर-वशता से ब्र० गोपालानन्द जी के जीवन में उत्पन्न महाभयावह श्राप जनित अंधकार को सर्वथा निर्मूल कर सफलतापूर्ण समाधि के अपूर्व प्रकाश का वरदान भी दे दिया।

दूसरी घटना मेहू मल्लाह द्वारा महात्मा श्रीकृष्णानन्द जी को दिये गये श्राप की कथा है। जिसे सामयिक रूप से दयार्द्र दया-निधि ने उस समय टाल दिया परन्तु उनके उत्तरवर्ती जीवन में स्वयं महाप्रभुजी ने प्रकट होकर आदेश दिया कि अब उस श्राप को भोग में ले लो नहीं तो आगे अगले जन्म को व्यर्थ में नष्ट करेगा। श्री प्रभुजी की कृपा से शीघ्र ही भुगतान हो गया।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी (श्रीसद्गुरुदेव जी) एक बार बोले—दो प्रकार के संस्कारों का भुगतान करना ही पड़ता है उनमें सद्गुरुदेव भी बहुत खुल कर मदद नहीं कर पाते। एक तो आत्मकृत कर्मों के फल में, दूसरे अपने ही घरों की लेन-देन में (एक ही सत्ता से प्राप्त शक्ति का आपस में ही पुण्यवृत्ति विरोध कारण क्षोभ से दिया गया श्राप)।

साधक की प्रकृति ही वर-श्राप का कारण:—

वाराणसी में योग प्रवचन करते हुये परम-पूज्य श्री प्रभुजी ने कभी कहा था— जो साधक

यम, नियम का दृढ़तर पालन नहीं करते वे सद्गुरु कृपा शक्ति से साधना जगत में श्वासो-श्वास से आत्मिक शक्ति को तो प्राप्त हो सकते हैं परन्तु ऐसे साधकों का पतन होने की सम्भावना रहा करती है। पहाड़ों की बात और है। वहाँ जिसे सिद्ध लोग ग्रहण कर लेते हैं फिर उसे भूतल पर आने नहीं देते। वे उन्हें निरन्तर दीर्घकालिक समाधिके अभ्यासमें लगा देते हैं। पहाड़ों में ऐसे साधक जनहीन प्रदेशों में तत्व असता तथा समाधि अभ्यास से अपने पूर्व संचित संस्कार बीजों को भस्म कर देते हैं। संग दोष न होने से उदार संस्कार भी समाधि निरन्तर होने के कारण निष्फल हो जाते हैं। नये संस्कार एकाग्र, निर्जन, सङ्गरहित समाधि-रत होने के कारण नहीं बन पाते। परन्तु समाज में रहकर साधन करने के लिये यम, नियमों में निष्ठा होना परमावश्यक है क्योंकि ऐसा न होने पर इन्हीं छिद्रों से आत्म-शक्ति का ह्रास होता है। सम्प्रज्ञात अथवा असम्प्रज्ञात समाधि के किसी भी अवस्था से प्रकृतस्थता को प्राप्त होने पर स्वभाव सिद्ध प्रवृत्ति ही वर्तन करने लगती है। तब क्रोध भाव वाले को संग होने पर क्रोध इसी प्रकार अन्य सङ्गों का भी प्रभाव मन पर पड़ता है। यह बात और है कि साधक वैराग्य एवं यम, नियमों के अभ्यास से सङ्ग-प्रभाव को मन में स्थान ही न दे। अन्यथा सङ्ग प्रभाव से प्रसन्न होने पर वर रूप में तथा अप्रसन्न होने पर श्राप रूप में एकाग्र मनः चेतना शक्ति उपकार अपकार में रत हो जायेगी। भगवती गीता में जगद्गुरु भगवान श्री कृष्ण ने ऐसे कर्मयोगी संसार सेवी साधकों के लिये आदर्श सिद्धान्तों का उपदेश किया है—

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥

उपरोक्त तथ्यों की पुष्टी श्री प्रभुजी द्वारा वर्णित योगिराज सुन्दरगिर अखाड़िया तथा स्वामी हरिहरानन्द कालिका विरक्त उपाख्यान से स्पष्ट हो जाती है। वहाँ माता द्रौपदी की द्वारा श्री महाप्रभुजी के चरण-कमलों में भाव प्रवण भक्ति गीत गाने पर तुरीय स्थिति सम्पन्न स्वामी मुलखराज जी द्वारा आग्रह पूर्वक पुत्राला सम्पत्ति का वरदान दिलवाना भी उपरोक्त भाव की ही पुष्टी करता है।

पात्रता, पदार्थ और काल:—

वरदान प्राप्त करने की अगणित कथाओं को हम समझने की सुविधा के लिये दो वर्गों में बाँट लेते हैं। प्रथमतः मोक्ष, भक्ति, ज्ञान हेतु तप स्वाध्याय द्वारा साधक को देवता, सिद्ध, ऋषिगण लोगों का दर्शन एवं कार्य सिद्धी हेतु वर प्राप्त करने वाली दिव्य गाथायें दूसरी लौकिक ऐषणाओं एवं कल्पनातीत ऐश्वर्य, आयु, धन, कीर्ति की प्राप्ती के लिये अभीष्ट तप स्वाध्याय साधक द्वारा किया

जाना । दोनों ही अवस्था में वर प्राप्ति के लिये साधक की पात्रता कार्य की गुरुता के अनुरूप होना आवश्यक है अन्यथा कार्य सिद्धि असम्भव हो जाता है ।

तीव्र संवेगानामासन्नः ।

भगवान पतञ्जलि का यही निर्देश है आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करने हेतु । सर्वत्र विराजित चिदात्मिका शक्ति स्वयं ऐसे व्यक्ति पर प्रसन्न होकर अपने स्वरूप का ज्ञान प्रदान किया करती है । आत्मा स्वयं ऐसे साधकों का वरण किया करती है । यही पात्रता है ।

स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोगः ।

इस सूत्र का स्पष्टीकरण भगवान वेदव्यास ने किया है—

देवाः ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्याय-शीलस्य दर्शनं गच्छन्ति कार्ये चास्य वर्तन्त इति ।

देवता लोग, सिद्ध लोग व ऋषिगण तीव्र संवेग से स्वाध्यायशील व्यक्तियों को दर्शन देकर सफल मनोरथ करते हैं । स्वाध्याय, तप, दान की तत्परता, तीव्रता ही वर प्राप्त करने की पात्रता है । इसीलिये तो पौराणिक कथाओं में राक्षस भी अपनी तप निष्ठा एवं तत्परता से ब्रह्मा, विष्णु तथा भगवान शिव से नाना वरदान प्राप्त कर पाये हैं ।

दूसरी वस्तु है पदार्थ । अकल्पनीय कल्पना को भी मूर्त करने हेतु यदि साधक में पात्रता हो तो इष्ट द्वारा अकल्पनीय पदार्थ भी अदेय नहीं होता । पदार्थ नित्य है । योगी ब्राह्मी सृष्टि सदृश अपनी नूतन सृष्टि की रचना में समर्थ होते हैं । अतः पदार्थ की अपरमिता, अनन्तत्व, नित्यत्व की दशा में भी वरदाता सर्व समर्थ सिद्धों के लिये अदेय कुछ है ही नहीं ।

कर्तुं म कर्तुमन्यथा कर्तुं सर्वथा शक्तः स सिद्धः ।

जिनमें वर-शाप देने की, अनुग्रह-निग्रह की सर्व प्रकार शक्ति हो वह सिद्ध कहलाते हैं ।

तीसरा अवयव है काल—जिस व्यक्ति की निर्मल चेतना काल तत्व का सूक्ष्मतम बोध कर लेती है उसे ही परमवरद स्थिति मोक्ष प्राप्त होती है । ज्ञान, भक्ति, समाधि उसी साधक को प्राप्त होता है जिसके मन में काल-देव अपने स्वभाव स्वरूप का यथार्थ बोध करा देते हैं । जिस साधक को अन्तःतल में नचिकेता की भांति बोध होगा यथा—

किं श्रिया किं च राज्येन
किं देहेन किमीहितैः ।
दिनैः कतिपयैर् एव
कालः सर्वं निकृन्तति ।।

लक्ष्मी से क्या प्रयोजन ? राज्य का क्या करना ? शरीर से ही क्या होगा ? मनोरथों से क्या ? अरे थोड़े दिनों में काल इन सबों को मार देगा । अथवा—

पेलवं शरदीवाभ्रम-
स्नेह इव दीपकः ।

तरङ्गक इवलीला
मतमेवोपलक्ष्यते ॥
अत्यहो सेतमुत्सृज्य
शनैरलमनारतम् ।
आत्मेव जरच्छुभ्रम्
कालेन विनिहन्यते ॥

शरद ऋतु के बादल, तेल रहित दीपक और तरंग के समान आयु चञ्चल और नष्टः प्राय है। जिस प्रकार कोई चूहा निसंकोच भाव से नित प्रति दिन खोदता रहता है, उसी प्रकार काल भी निर्दयता से धीरे-धीरे काटता रहता है।

साक्षात् कालदेव ने जब नचिकेता को तीन वरदान देना चाहा। उस समय काल तत्व बोध सम्पन्न महामति नचिकेता ने क्षण भंगुर पदार्थों का त्याग कर ब्रह्म विद्या (योग) का ही वरण वरदान रूप में किया।

किसी दुर्लभ भौतिक वर हेतु जिसमें समष्टिगत दीर्घ लाभ की भावना हो अथवा जिसमें समष्टि की हानि निहित हो ऐसे कार्य सिद्धि में भी कारण-कार्य सम्बन्ध की पूर्ती हेतु काल की महत्ता रहा करती है। मनु शतरूपा द्वारा दीर्घ उपश्चर्या से भगवान नारायण का प्रकट होना स्वयं अपने सदृश पुत्र अभिलाषा दम्पति के हृदय में देखकर अगले जन्म में वर पूर्ती निश्चित करना अथवा दिलीप से आगे कई राजाओं द्वारा भगवती गङ्गा का धरती पर अवतरण कराने का प्रयास जो सफल न हो सका—कालान्तर में भगीरथ का अपूर्व संकेत से किया गया तप कालावधि में वर प्राप्ति का कारण बना।

अतः वर प्राप्ती में व्यक्ति की साधन पात्रता, अभीष्ट पदार्थ की सुलभता तथा काल तीनों ही अपनी भूमिका निभाते हैं।

जहाँ वर-श्राप की गति नहीं:—

दिव्यलोक ज्योति का दर्शन कर जो साधक सहज ही विवेक-ख्याति की ओर बढ़ रहा हो तथा सद्गुरु शरणापन्न हो तो गुरु कृपा से श्राप की गति को काल प्रेरित हुआ करती है उससे सदैव सद्गुरु अपने अनुगत साधक को बचा लिया करते हैं। ऐसा दुर्लंघ्य समय उपस्थित होने पर साधक के समस्त प्राण को सद्गुरु खींचकर ब्रह्माण्ड में (जहाँ सहस्रदल में स्वयं विराजते हैं वहाँ अकाल स्थिति है, वहाँ काल की गति नहीं है) स्थापित कर देते हैं। श्राप काल के निमोचन होने पर जैसे छूटा हुआ तीर या गोली यदि लक्ष्य वेध विफल हो जाये तो वही तीर पुनः लौट कर वेध नहीं करता। परम-करुणार्णव श्री प्रभुजी द्वारा ऐसी ही कृपा अपने एक गुरु-भाई पर हुई थी। उन साधक गुरु-भाई को ध्यावस्था में ज्ञात हुआ कि कल काल प्रेरित विकट नाग तुम्हें दंशकर मृत्यु की गोद में अमुक समय पर सुला देगा। परन्तु तुम आत्मवान तथा हमें प्रिय हो अतः अमुक समय में ध्यानावस्था में बैठ जाना। घटना जैसी ही घटी वे जिस कमरे में ध्यानस्थ बैठे थे, समय उपस्थित होने

सूर्य किरण-चिकित्सा से स्वास्थ्य लाभ

❀ श्री ब्रह्मचारी ओमप्रकाश

भगवान सूर्य में सर्वोत्तम गुण है। सूर्य प्रकाश से ही हमें जीवन शक्ति प्राप्त होती है। हमारे समस्त रोग निवारण करने का गुण सूर्य प्रकाश में ही है। हमारे पूर्वज हजारों वर्ष पहले से ही यह बात भली-भाँति जानते थे कि भगवान सूर्य की किरणों में रोग-नाशक अपूर्व शक्ति है और उनसे हमारे बल, वीर्य तथा तेज की भी वृद्धि होती है।

सूर्य से जो किरणें पृथ्वी पर आती हैं उनका रंग तो देखने में सफेद होता है परन्तु प्रत्येक किरण में सप्त रंगीन किरणों का समावेश रहता है। किसी भी सूर्य किरण को बिल्लौरी काँच द्वारा देखने से निम्नलिखित सात रंग क्रमानुसार स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं—बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी और लाल। प्रत्येक रङ्ग की किरणों में भिन्न-भिन्न रोगों को नाश करने की शक्ति है। विशेषज्ञों के शोध के अनुसार इस ब्रह्माण्ड में हर पदार्थ का एक विशेष रंग होता है। वर्तमान युग में विभिन्न चिकित्सा प्रणालियाँ प्रचलित हो रही हैं, उन सब की उत्पत्ति का मूल आधार सूर्य की भिन्न-भिन्न रंग की किरणों के तत्व हैं, जो जड़ी बूटियों तथा धातुओं के अन्दर समाये हुये हैं। सूर्य-किरण चिकित्सा

(पिछले पृष्ठ का शेष)

पर अचानक एक भयङ्कर विषधर निकला। क्रोधावेश में फुफकारता साधक की ओर झपटा परन्तु पास आकर वह स्वयं कीलित होकर साधक के शरीर पर उतरता चढ़ता रहा। शरीर में जीवन का कोई चिह्न न पाकर जैसे आया था वैसे ही लौट गया। उस समय साधक ने जो अनुभव किया वह यह था कि उसे गुरुदेव की अखण्ड मण्डलाकार ज्योति युक्त दर्शन हुए। प्रसन्न वदन श्री प्रभुजी सहस्रदल मण्डित ज्योति कमल पर विराजमान थे बोले—बेटा! यहाँ चढ़ आ नहीं तो काल अपना कार्य सम्पादित कर लेगा। साधक श्री सद्गुरु के निर्भय क्रोड़ में बैठा काल की भी वंचना करने में समर्थ सिद्ध हुआ और ऐसा हो भी क्यों नहीं?

"पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्"

निर्बीज समाधि में काल, कर-श्वासगति अवरुद्ध हो जाती है—

सुमिरत हरि श्राप गति बाधी।
सहज विमल मन लागि समाधी॥

❀❀

में इन हजारों दवाइयों के स्थान पर सूर्य की सप्तरंगी किरणों को सीधा ही इस्तेमाल किया जाता है। इस चिकित्सा प्रणाली की दो विशेषताएँ हैं—सरलता और सस्तापन।

सूर्य के प्रकाश में अनेक दृश्य और अदृश्य किरणें होती हैं। मनुष्य की आँखें केवल दृश्य किरणों के प्रति संवेदनशील होती हैं, इसलिए मानव के रोगों का इलाज दृश्य किरणों के उपयोग से करना अधिक उपयुक्त है। दृश्य किरणों के वर्ण-क्रमशः, बैंगनी, आसमानी, नीला, हरा, पीला, नारंगी और लाल हैं। इनमें नीला, हरा और लाल मूल रंग हैं। शेष रंग मिश्रण हैं। ये सात रंग उन सैकड़ों दवाइयों का स्थान ले सकते हैं, जो इन दिनों इस्तेमाल की जा रही हैं।

किस रंग की कमी से शरीर में कौन-सा रोग होता है ?

यदि मनुष्य के शरीर में हल्का नीला रंग कम हो गया हो, तो बुखार, अतिसार एवं पेट की मरोड़ आदि रोग होते हैं। यदि गहरा नीला रंग कम हो गया हो और लाल रंग बढ़ गया हो तो सन्धियों (जोड़) का जकड़ना दर्द होना, प्रमेह, पथरी, दाह, खट्टी और कड़वी डकारें आना, गर्दन अकड़ना, बाल गिरना, और आँखों के रोग उत्पन्न होते हैं।

यदि पीला रंग कम होकर हरा नीला रंग बढ़ गया हो, तो मेदरोग, गुल्म रोग, शूल, पसलीका दर्द, मसूड़ों का दर्द, योनि जन्य शूल, कृमि, दिल के, फेफड़े की बदकोष्ठता और शोथ (सूजन) आदि रोग हो जाते हैं।

यदि हरा रंग कम होकर लाल रंग बढ़ गया हो तो फोड़े फुन्सी, खुजली, दाद, गज-कर्ण, गठिया नासूर आदि त्वचा के रोग हो जाते हैं। वैसे ही पकने वाले, बढ़ने वाले, सड़ने वाले रोग हो जाते हैं। कदाचित् शरीर में तीनों ही रंग कम हो जाय, तो शरीर में दुर्बलता आ जाती है।

तात्पर्य—नीले रङ्ग की अधिकता से वातजन्य रोग उत्पन्न होते हैं, केवल लाल रंग बढ़ने से त्वचा में सूजन आ जाती है और गर्मी के विकार होने लगते हैं। सुनहरा (पीला) रंग बढ़ने से शरीर में चीसें उठना, धड़कन, दुर्बलता आदि रोग होते हैं। इसलिए नीला रंग बढ़ने से अन्य चारों रंगों की अधिकता से बढ़ने वाले रोग मिटते हैं।

अनुभव से ज्ञात हुआ है कि जिस मनुष्य में लाल रंग की कमी होती है वह सुस्त होता है, उसे निद्रा अधिक आती है, भूख घट जाती है, कब्ज भी अधिक रहता है।

नीले रंग की कमी हो तो उसमें क्रोध अधिक रहता है उससे चुपचाप नहीं बैठा जाता है, कभी-कभी शरीर गर्म रहता है और कभी दो-चार दस्त भी हो जाते हैं।

रङ्ग और उनके गुण:—

नीले (आसमानी) रंग की बोतल के पानी से बुखार, पुरानी पेचिश, अतिसार, संग्रहणी,

खांसी, श्वांस, कास, सिर पीड़ा, मस्तिष्क के रोग, गर्मी, प्रमेह, पथरी, मूत्र विकार, विस्फोटक, विसोपद इत्यादि गर्मी की अधिकता से होने वाले रोग सरलता से अच्छे हो जाते हैं।

सब रंगों में नीला रंग श्रेष्ठ है। प्राणी मात्र का नैसर्गिक जीवन इसी रंग पर निर्भर है। समस्त पृथ्वी पर फैले हुये आकाश का रंग नीला है। इस नीले रंग से ही हम को जीवन शक्ति प्राप्त होती है। नीला रंग ठंडक तथा शान्ति देने वाला है। इसमें विद्युत शक्ति है और पौष्टिक होने के कारण कब्ज करने वाला है। नीला रंग जितना हल्का होगा उतना ही अधिक ठंडक देने वाला होगा और जितना अधिक गहरा होगा उतनी ही अधिक गर्मी होगी। नीले रंग की बोतल के पानी से पेट की गड़गड़ाहट, पेट का फूलना पेट में अजीर्ण होना, बद्ध कोष्ठ, अजीर्ण, कृमि रोग पेट विकार आदि पेट के रोग अच्छे होते हैं। इसके अतिरिक्त जिगर (Liver) तिल्ली (Spleen) दिल यानि हृदय अथवा कलेजा (Heart) फेफड़ा (Lungs) के अनेक रोगों के लिए अत्यन्त हितकर है।

नीली शीशी जितनी अधिक लाल वर्ण की होगी उतनी ही गर्मी उसमें अधिक होगी और जितना अधिक नीलापन उसमें होगा उतनी ही वह कम गर्म होगी। वात तथा कफ जन्य रोगों को यह शीघ्र दूर करता है। नीली बोतल का पानी बहुत थोड़ा-थोड़ा कुछ दिन पीना पड़ता है। इस बोतल के पानी को साधारण पानी तरह अधिक मात्रा में कदापि नहीं पीना चाहिए। यदि अधिक मात्रा में पी लिया जाय तो पेट में गर्मी बढ़कर जुलाब लग जाता है। इतना ही नहीं, गर्मी अधिक बढ़ जाने के कारण और जुलाब होने की वजह से शरीर के अन्य गुप्त रोग भी बल पकड़ लेते हैं। इसलिए इसे थोड़े परिमाण में लेना चाहिए। इससे अपचन तथा मलावरोध अवश्य मिट जायेगा। यह पानी युवा पुरुषों को तो तात्कालिक फल देता है, ऐसी इस विद्या के प्रवीण डाक्टरों की सम्मति है।

हरे रंग की बोतल के पानी से त्वचा रोगों Skin diseas का नाश होता है। जैसे—बिवाई का (हाथ पाँव का फटना), (खुजली, दाद, फोड़ा, गंज, आदि सब प्रकार के त्वचा रोग) रक्त पित्त (छाती, नाक, मुँह, गुदा से रक्त गिरना आदि) स्त्रियों का रक्त प्रदर, व्रण (नासूर) घाव, गर्मी के चट्टे, अर्श (बवासीर) सब प्रकार के शरीर में पकने वाले, बहने वाले, सड़ने वाले, दुर्गन्ध युक्त और किसी भी औषधि से अच्छे न होने वाले इसी प्रकार के विकार निःसन्देह दूर होते हैं। हरी शीशी जितनी शुद्ध रंग की होगी, उतने ही गुण उसमें अच्छे होंगे, किन्तु गहरा और हल्का रंग भी उचित नहीं है। यह रंग चर्म रोगों पर अमूल्य गुणकारी है। विशेष कर आँखों को अति रुचिकर और अतुलित शान्तिकर है।

लाल रंग—इस रंग की बोतल के पानी के सेवन से वायु से अकड़ी हुई नसें, नसों का ढीलापन या उनमें गाँठ पड़ जाना तथा लूले लंगड़े मनुष्य के अवयव अवश्य अच्छे हो जाते हैं। यह रंग गर्मी बढ़ाने वाला और विद्युत गुण वाला है। शरीर के निर्जीव भाग को चैतन्य करने की इसमें अद्भुत शक्ति है। सर्दी से आयी हुई सूजन अर्थात् ओतोस्म इससे अच्छी हो जाती है। शरीर के किसी भी भाग में गति न होती हो तो लाल प्रकाश डालने से चैतन्यता आ जाती है किन्तु इस बोतल का पानी कुछ खास रोगों में ही पीने के लिए दिया जा सकता है। वैसे प्रायः पीना सर्वथा अयोग्य है। यह पानी बहुधा मालिश करने या शरीर के बाहरी भाग में लगाने या पट्टी रखने के काम आता है। यह पानी 'Alopathy' के (Iodine) से भी अधिक गुणकारी है। यह अत्यन्त गर्म होता है और यदि भूल से भी पीने में आ जाय तो खून के दस्त अथवा उल्टी होने का भी भय रहता है और यदि आँखों में गिर जाय तो आँख फूटने का भी भय रहता है।

सफेद बोतल का पानी—

ये जल केवल पीने के काम में आता है क्योंकि इसमें सूर्य की सातों रंग की किरणें आकर्षित होती हैं। इसलिए मनुष्य के शरीर की सातों धातुओं को पुष्टि देने का कार्य जल स्वयं करता है।

जल तैयार करने विधि—

जिस रंग की बोतल में जल तैयार करना हो, उसको बहुत सावधानी तथा ध्यान पूर्वक धोकर साफ कर लो। बाहर या भीतर किसी प्रकार का मैल, दाग या धब्बा न रहने पावे और कुँआ, तालाब या नदी का स्वच्छ जल (यदि झरने का जल मिल सके तो अति उत्तम) चार तह वाले कपड़े से छानकर चार अंगुल खाली बोतल में भर दो। यदि मिल सके तो जिस रंग की बोतल हो उसी रंग के काँच का ढक्कन उसमें लगा दो। यदि काँच का ढक्कन न मिले तो कार्क अच्छी तरह लगा देना चाहिए फिर बोतल को बाहर से पतले कपड़े से पोंछ कर धूप में रख देना चाहिए।

धूप में रखने की विधि—

बोतल एक लकड़ी की पटिया, टेबिल या तिपाई पर धूप में रखनी चाहिए। जमीन या पत्थर पर न रखनी चाहिए।

धूप में रखने का समय—

पानी तैयार करने के लिए लिए दिन को १० बजे से ३ बजे तक उत्तम समय समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य किसी समय में तैयार किया हुआ जल गुणकारी नहीं हो सकता।

धूप में रखने का स्थान—

जल तैयार करने के लिए बोतलें रखने की जगह स्वच्छ और खुली हवा में होनी

चाहिए। आस-पास कूड़ा-करकट, पानी के गड्ढे या झाड़ी आदि न होनी चाहिए। जिस जगह पर बोतल रखी जाय, उस जगह १० बजे सवेरे से ४ बजे शाम तक धूप (सूर्य की किरणें) आती रहनी चाहिए। इसके मध्य समय में छाया उस स्थान पर न आनी चाहिए इस प्रकार के स्थान पर तैयार किया हुआ जल अत्यन्त गुणकारी होगा।

जल तैयार होने की पहचान—

धूप में रखी हुई बोतलें धूप से गर्म होकर जब उसके खाली भाग पर भाप के बिन्दु बनने लग जायें, तब समझना चाहिए कि पानी तैयार हो गया। यदि किसी कारण से शीघ्र ही जल तैयार करना हो, तो भाप के बिन्दु बनना शुरू होते ही बोतल को हटा लो, नहीं चार घन्टे में, बोतल धूप में रहने से, अत्यन्त गुणकारी जल तैयार होगा।

इस प्रकार का जल पीने का सर्व साधारण पर परिणाम—

इस जल-औषधि की एक मात्रा (One Dose) २॥ तोला अर्थात् १ औंस (One Ounce) है। रोगी को दिन में तीन बार यह औषधि देना पर्याप्त है; किन्तु यदि रोग पुराना या बलवान हो, तो यह परिमाण-क्रम बढ़ा भी देना पड़ता है। ध्यान इस बात पर अवश्य देना चाहिए कि रंग एकदम से शरीर में बढ़ न जाए; क्योंकि उससे गर्मी बढ़कर हानि होने की सम्भावना है। रोगी को जल्दी आरोग्य होने की इच्छा करनी चाहिए; किन्तु रोग जल्दी मिटाने के लिए इस औषधि को पानी समझकर बार-बार नहीं पीना चाहिए।

इस जल का बाह्य उपचार—

इस जल का प्रयोग बाहर (शरीर में) मालिश करने, पट्टी रखने और धोने में भी करते हैं। आवश्यकतानुसार अधिक जल लिया जाय तो भी कोई हानि नहीं है, जैसे घाव यदि अधिक जल से धोया जाय तो कोई हानि नहीं; परन्तु नीली बोतल के जल से अधिक देर तक घाव धोते रहने से उसमें मवाद होने की सम्भावना है।

जिस रंग के प्रकाश प्रभाव की दवा बनानी हो, उस रंग की बोतल में चीनी, दूध शक्कर को धूप में रख दिया जाता है। यह बोतल कम से कम ३० दिन धूप में रखी जानी चाहिए। इसे रोज हिलाते रहना चाहिए, पर चीनी या दूध, शक्कर में पानी नहीं मिलाना चाहिए। शरीर के बाहरी अंगों पर मालिश के लिए सूर्य किरणों के माध्यम से तेल तैयार किया जाता है। सरसों या नारियल के तेल को नीली बोतल में ठंडक पहुँचाने वाले उपचारों के लिए तैयार किया जाता है। गर्मी पहुँचाने वाले उपचारों के लाल रंग की बोतल में अलसी या कुसुम्भ (?) का तेल तैयार किया जाता है। तेलों को भी ३० दिन धूप में रखकर प्रतिदिन हिलाते रहने की विधि से तैयार किया जाता है। इसी

प्रकार मुँह के छालों के उपचार के लिए नीली बोतल में ग्लिसरीन तैयार की जाती है।

हरा रंग कब्ज के लिए सर्वोत्तम है। हरे रंग की बोतल में तैयार किए हुए पानी को प्रातः सायं काल खाली पेट पीने से जीर्ण कब्ज दूर हो जाता है। नारंगी रंग की बोतल में तैयार किए गये पानी को दोनों समय भोजन के बाद पीने से सभी उदर रोग दूर होते हैं। लाल रंग की बोतल में तैयार की हुई चीनी या मिश्री सर्दी जुकाम को दूर करती है। लाल रंग की शीशी में तैयार किए हुए तेल के मालिश से गठिया रोग दूर होता है। सफेद रंग की बोतल में तैयार किया गया पानी टानिक का काम करता है। इसमें भरपूर कैल्शियम होता है। इसलिए बच्चों के लिए विशेष लाभकर है। जलने, कटने, घाव होने या कीड़ों के काटने पर नीली शीशी में तैयार किए गये नारियल के तेल की मालिश से लाभ होता है।

आँखों की प्रत्येक बीमारी को दूर करने के लिए, यहाँ तक कि चश्मों से छुटकारा पाने के लिए हरे रंग की बोतल में तैयार किया हुआ गुलाब जल का पानी उपयोगी होता है। उसको आँखों में डालना चाहिए। हरी बोतल में तैयार किया हुआ साधारण पानी पीना चाहिए एवं उससे आँखों को धोना चाहिए। मुहासों से पीड़ित युवक और युवतियों को नीली शीशी में तैयार किए हुए नारियल के तेल से अवश्य लाभ होता है।

इसी तरह से रंगीन प्रकाश की Light पीड़ित अंगों पर डालने से अद्भुत लाभ होता है। इसके अतिरिक्त रंगीन खाली बोतलों को केवल एक घंटा (१२ बजे से १ बजे तक) रखने के बाद खाली बोतलों को सूँघने से भी अधिक लाभ होता है।

लेखकीय सम्पर्क—
श्री सिद्ध योग प्रशिक्षण केन्द्र, लखनऊ

❁ दिव्यदृष्टि ❁

कपालशोधिनी चैव दिव्यदृष्टिप्रदायिनी।
जत्रूर्ध्वजातरोगौघं नेतिराशु निहन्ति च॥

यह नेति नामक कपाल को शुद्ध करने वाला तथा दिव्य दृष्टि देने वाला और ग्रीवा की हड्डी से ऊपर के शरीर में पैदा होने वाले समस्त रोगों को शीघ्र नष्ट कर देता है, प्रकार से नासिका के छिद्रों को भी शुद्ध करता है एवं शब्द से निश्चय अर्थ होता है। सूक्ष्म पदार्थ को ग्रहण करने वाली दृष्टि का नाम दिव्यदृष्टि है।

मन्दिर श्री जगन्नाथ जी
और
कबीर की योग शक्ति

● श्री शिवराम सांगर

कबीर जन्मजात सिद्धयोगी थे, यह तथ्य उनके बारे में उन सभी घटनाओं से प्रगट होता है जो उनके शिष्यों द्वारा कही सुनी-जाती है। अनुसंधान पूर्वक भी उनकी विभिन्न जीवन गाथाएं प्रकाश में आई हैं उनमें भी कुछ ऐसी घटनाओं का वर्णन पढ़ने को मिलता है, जो उन्हें एक सिद्धयोगी के रूप में ही पाठक के सामने लाकर खड़ा कर देती है। प्रस्तुत लेख में लेखक ने सुप्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर के निर्माण के सम्बन्ध में कबीर साहब की अलौकिक योग-शक्ति का उल्लेख किया है। लेखक श्री सांगर सवाई आलम के सर्वश्री सद्गुरुदेव जी के परम श्रद्धावान सद् शिष्यों में से हैं। कबीर के योगी जीवन पर आपका विशेष अध्ययन है, यह भी इस लेख से प्रतीत होता है।

—सं०

आज से लगभग पांच हजार वर्ष पहले, जबकि भगवान कृष्ण ने प्रभास क्षेत्र में अपना शरीर त्यागा था, उससे पूर्व उन्होंने अपने निकटतम व्यक्तियों को यह निर्देश दिया था कि जब मैं शरीर छोड़ दूं तो मेरे शरीर को लकड़ी के एक सन्दूक में बन्द करके समुद्र में विसर्जित कर देना। उनके इस निर्देश का पालन किया गया उनके निर्जीव शव को एक मंजूषा में रखकर समुद्र में छोड़ दिया गया। यह मंजूषा बहती हुई, पश्चिम दिशा की ओर उड़ीसा के तट पर पहुँची तब उसी रात को वहां के राजा इन्द्रदमन को स्वप्न में भगवान श्रीकृष्ण ने अपने दर्शन दिये और कहा कि समुद्र में बहती हुई जो मंजूषा किनारे पर आ लगी है, उसमें मेरा स्थूल शरीर है, तुम उसे निकलवा लो और मेरे नाम से यहां एक मन्दिर का निर्माण करवा डालो, मैं जगन्नाथ के नाम से प्रसिद्ध होकर प्रतिष्ठित रहूँगा। यह कहावत भी इस घटना की पुष्टि करती है:—

एक बेल मथुरा उगी, डाल गई जगन्नाथ।
फूल खिले है द्वारिका, फल लागे बद्रीनाथ॥

राजा इन्द्रदमन को स्वप्न में भगवान श्रीकृष्ण ने जो आदेश दिया था उसे अपने मंत्रियों के सामने प्रकट किया और उनके साथ समुद्र तट पर जाकर वे उस मंजूषा को ले आये जो प्रभास क्षेत्र से बहती हुई यहां तक आ पहुँची थी। समुद्र तट पर ही राजा

ने कुशल कारीगरों को बुलाकर मन्दिर का निर्माण भी शुरू करवा दिया। जब विपुल धन-राशि व्यय करने के बाद मन्दिर बनकर तैयार हो गया तब अचानक समुद्र में भयानक ज्वार भाटा और तूफान आया और समुद्र की विकराल लहरें मंदिर की दीवारों से टकराने लगीं तथा देखते ही देखते समूचा मन्दिर ध्वस्त होकर गिर पड़ा और समुद्र ने उसे अपने अन्तराल में विलीन कर लिया। क्योंकि राजा इन्द्रदमन को भगवान श्रीकृष्ण की तरफ से मन्दिर बनाने की आज्ञा थी अतः उसने हिम्मत नहीं हारी। उसने पुनः मन्दिर का निर्माण कार्य प्रारम्भ करवा दिया। लेकिन जब मन्दिर बनकर तैयार हो गया तो पुनः समुद्र में से तूफान उठा और देखते ही देखते मन्दिर ध्वस्त हो गया। राजा इन्द्रसेन ने फिर भी हिम्मत नहीं हारी और तीसरी बार एक विशाल और सुन्दर मन्दिर बन गया, जिसे एक बार फिर समुद्र की लहरों ने लील लिया। तीन बार बनवाने पर भी मन्दिर को ध्वस्त होते देखकर राजा बहुत दुःखी हुआ और उसने मन्दिर का निर्माण ही बन्द करवा दिया।

तब इन परिस्थितियों में राजा इन्द्रदमन की सहायता के लिये सतलोक परमधाम से सतगुरु श्री कबीर साहब ज्योति-रूप धारण कर उसकी सभा में प्रगट हुए। मानवाकृति तेजोमय स्वरूप धारी सद्गुरु को देखकर सभी सभासद आश्चर्य चकित हो गये और राजा सहित सभी ने उन्हें देव मानकर सादर नमस्कार किया। इन्द्रदमन ने स्वयं सिंहासन से उतरकर सद्गुरु को सिंहासन पर बैठाया और फिर विधिपूर्वक पूजन नमन कर उन्हें प्रसन्न कर निवेदन किया कि—हे भगवन्! भगवान का मन्दिर मैंने तीन बार बनवाया मगर तीनों बार समुद्र ने उसे गिरा दिया। राजा की परेशानी देखकर सतगुरु ने बतलाया कि वे उसकी सहायता के लिये ही आये हैं। सद्गुरु ने कहा कि हे राजन! आप भगवान जगन्नाथ जी के मन्दिर को एक बार पुनः बनवाना प्रारम्भ करें। इस बार मैं समुद्र को रोक दूंगा और वह आपके द्वारा निर्मित मन्दिर को कोई हानि नहीं पहुंचा सकेगा। राजा इन्द्रदमन ने कबीर साहब के तेज को देखकर विचार किया कि यह महात्मा अवश्य कोई महान देव है और यह समुद्र के उपद्रवों का निवारण करने में अवश्य समर्थ होंगे। ऐसा विश्वास करके उसने एक बार फिर से मन्दिर का निर्माण कार्य प्रारम्भ करवा दिया। निर्माण कार्य पूरा हो जाने पर सतगुरु श्री कबीर स्वामी समुद्र तट पर जाकर पूर्व दिशा की तरफ मुंह करके सिद्धासन लगाकर, आगे आगे योगचक्र (कुण्डली) की स्थापना कर अति प्रसन्न मुद्रा में बैठ गये।

इधर समुद्र तरंगित होता हुआ एक बार फिर बड़े वेग से प्रलय काल के समान दौड़ता

हुआ मंदिर को गिराने के लिए उद्यत् हुआ। लेकिन सर्व शक्ति सम्पन्न जगतपति परमात्मा स्वयं सतगुरु श्री कबीर स्वामी देह धू पस्वरूप में सामने विराजमान थे,जिनके तेज के आगे समुद्र स्वयं को बलहीन अनुभव करने लगा। वहाँ से कुछ दूरी पर खड़े-खड़े राजा इन्द्रदमन सहित हजारों नर-नारी इस दृश्य को देख रहे थे। समुद्र जब सद्गुरु कबीर के कारण मंदिर को ध्वस्त करने में असफल रहा तब वह ब्राह्मण का रूप धारण कर स्वर्णथाल में अनेक प्रकार के माणिक्य आदि रत्नों को लेकर सामने आया। सद्गुरु कबीर को अनेक भेंट देते हुये अपना परिचय दिया। और भूमि पर पड़कर दण्डवत् प्रणाम किया। समुद्र ने निवेदन किया कि हे देव! इस समय भी मैं पहले की तरह मंदिर का विध्वंश करने के लिए आया था लेकिन आपके समक्ष मैं अपने को इस हेतु समर्थ नहीं पा रहा हूँ। आप तो साक्षात् स्वयं न्यायकर्ता हैं अतः आप ही मेरी बात सुनकर न्याय कीजिये। भगवान श्रीकृष्ण ने प्रथम द्वापर युग में अपनी शक्ति से मेरे जल को हटाकर द्वारिकापुरी बसाई थी फिर त्रेतायुग में भगवान श्रीराम ने वानरों के साथ लंका जाते समय मेरे पर सेतु बन्ध करके मेरी मर्यादा का उल्लंघन किया था, जिससे मेरा महत्व नष्ट हुआ। इन अपराधों का प्रतिकार मैं अभी क्यों न करूँ। क्योंकि वही विष्णु रामावतार तथा कृष्णावतार धारण करके यहाँ जगन्नाथ रूप धारण कर रहे हैं। अतः मैं उन पूर्वकृत उनके कृत्यों का बदला लेना चाहता हूँ। तब कबीर स्वामी ने समुद्र को उत्तर दिया कि इस कलियुग में श्री जगन्नाथ जी का महात्म बहुत बढ़ने वाला है और इनके दर्शन करके असंख्य जीवों का कल्याण होने वाला है। इसीलिये तुम्हें रोकने हेतु मैं यहाँ आया हूँ। अतः आपको जगन्नाथ मंदिर को नष्ट नहीं करना चाहिए। यदि बदला लेना ही है तो तुम उस स्वर्णमयी द्वारिकापुरी को अपने में विलीन कर सकते हो, जो अब सूनी पड़ी है।

सद्गुरु का यह वचन सुनकर समुद्र अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उन्हें प्रणाम करके अपने स्वरूप में विलीन हो गया (बाद में स्वर्णमयी द्वारिका को अपने में विलीन करके समुद्र ने अपना बदला पूरा किया। आज जो द्वारिका में भगवान का मंदिर है वह भी स्वर्ण का है और उसे समुद्र ने अपने में डुबोया नहीं है। मंदिर के स्वर्ण का बना होने का प्रमाण यह है कि मंदिर के टूटे पत्थरों में चूना, सीमेन्ट आदि लगता नहीं है वस्तुतः यह मंदिर पत्थर का होता तो अवश्य ही ऐसा नहीं होता। पीपाभक्त तथा राजा अजमल जब समुद्र में डूबी द्वारिका को देखने गये थे तब भगवान श्रीकृष्ण ने उनकी इच्छा पूर्ण कराते हुए उसका दर्शन उन्हें कराया था।)

इसके पश्चात् राजा इन्द्रदमन तथा वहाँ के सब निवासियों ने सतगुरु के चरण-कमलों में साष्टांग प्रणाम किया और सम्मान पूर्वक उन्हें अपनी राज्य सभा में ले आए। राजा को एक अन्य स्वप्न में श्रीकृष्ण ने कहा कि समुद्र के किनारे जिस जगह पर स्थित होकर श्री कबीर स्वामी ने समुद्र को पीछे हटाया था उस स्थान पर तुम उनका भी एक सुन्दर मन्दिर बनवाओ। साथ ही मेरी पूजा की भी तैयारी करो। भगवान की आज्ञा से राजा इन्द्रदमन ने सतगुरु कबीर स्वामी का भी एक सुन्दर मंदिर बनवाया। तत्पश्चात् शास्त्रोक्त विधि-विधान से सब प्रकार की पूजन सामग्री तैयार कर शुभ लग्न, घड़ी तथा तिथि में भगवान विष्णु की पूजा आरंभ की। पूजा के अवसर पर सद्गुरु कबीर स्वामी ने राजा इन्द्रसेन तथा पूजकों से कहा कि यह भी जगन्नाथ जी का धाम है अतः यहां वर्ण भेद, पंक्ति भेद नहीं करना चाहिये। केवल एक ही पंक्ति में बैठकर सबको भोजन करना चाहिए क्योंकि मनुष्य मात्र का उद्धार करने के लिए ही इस मंदिर का निर्माण किया गया है। सद्गुरु के ये वचन सुनकर राजा इन्द्रदमन सहित सबको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। सद्गुरु जी के मंदिर के चिह्न आज भी वहां विद्यमान हैं। वहां आज भी चारों वर्णों के लोग एक पंक्ति में बैठकर एक ही साथ भोजन करते हैं। राजा के अनुरोध पर सद्गुरु ने आश्रम पर समुद्र के खारे जल को मृदु जल में बदल दिया था जो आज भी वह वैसा ही मीठा है। मंदिर में यात्रियों को चरणामृत दिया जाता है। इन उपरोक्त पांचों चिन्हों को देखकर प्रतीत होता है कि जगन्नाथ मंदिर की स्थापना श्री कबीर स्वामी ने ही करवाई थी।

कुछ काल के बाद वैष्णवाचार्य श्री रामानुजस्वामी रंगपुरी में रहकर अपना धर्माचार नामक ग्रन्थ चला रहे थे। यह ग्रन्थ दक्षिण भारत में सुचारु रूप से प्रचलित भी हुआ। उन्होंने सब वर्णों का एक पंक्ति में खाने के बारे में कड़ा विरोध किया। भगवान जगन्नाथजी के स्वप्न में मना करने पर भी वे नहीं माने, परिणाम स्वरूप जगन्नाथ जी ने उनको उनकी सम्पूर्ण मण्डली सहित सोते में ही उठवा कर रंगपुरी से दूर फिंकवा दिया। सुबह जगने पर वे सब बड़े हैरान हुए और उन्होंने फिर अपनी हठ छोड़ दी।

कबीर साहब ने खुद लिखा है कि—

जगन्नाथ के भात को,
भेद करो जो पाप।
जो उनकी निन्दा करे,
निश्चय नरकहिं जाय।

—✿✿✿✿—

गीता का केन्द्रीय विषय

※ श्री शिव नारायणलाल

गीता का आरम्भ महाभारत युद्ध की एक आरम्भिक घटनासे होता है। जब अर्जुन सेना का निरीक्षण करने, अपने तुल्य उन सभी योद्धाओं को देखना और समझना चाहता है जिनके साथ उसे लड़ना होगा किन्तु वहाँ उसे सभी अपने लोग ही दिखाई देते हैं। शत्रु कोई नहीं। युद्ध तो अपनों से नहीं, शत्रु से किया जाता है।

गीता ज्ञान के प्रबोधक मानव प्रतिनिधि साक्षात् परमात्मा है, और श्रोता के रूप में मानव प्रतिनिधि शिष्य के रूप में वीर अर्जुन है।

गीता वेदान्तिक ग्रन्थ और ब्रह्म विद्या का उपनिषद भी है। गीता के रचनाकार महर्षि-व्यास हैं जो वेदान्त सूत्र-ब्रह्मसूत्रों के रचनाकार भी हैं। अतः यह माना जाना चाहिए कि गीता का प्रवचन केवल महाभारत का अंग न होकर उससे कुछ अपर भी है।

वह अपर क्या है? इसका सम्बन्ध मानव आत्मा से है मानव आत्मा ही अर्जुन है और वह आत्मा परमात्मस्वरूप भगवान श्रीकृष्ण से मार्ग दर्शन पाकर स्वधर्म को जानना चाहती है। उसके शत्रु भी, उसके अन्दर में उसके अपने बनकर शरीर में ही निवास करते हैं। बाह्य संसार में परिवार समाज और राष्ट्र भी उसकी समस्या है उनके साथ अनेक द्वन्द्व, अन्य अन्ध-विश्वास प्रेरित धार्मिक पाखण्ड उसका पल्ला पकड़ते हैं। उसे उस मार्ग पर आने नहीं देते जहाँ वह स्वधर्म का पालन करता हुआ अपने भीतर स्थित आततायियों का वध करते हुए अपने ही भीतर स्थित सद्गुणादि का परित्राण कर सके। ताकि अवगुणों को आत्मीय, परिवार-जन, समाज और न सभी सम्बन्धी समझे। यह सत्य है तथा कथित अवगुण भी शरीर के ही भौतिक अभौतिक भाग हैं। उनकी उत्पत्ति भी पंचभूतों की भाँति आकाश तत्व को छोड़कर एक दूसरे से हुई है। जैसे आकाश से वायु उत्पन्न हुआ, आकाश का गुण शब्द है किन्तु वायु आकाश से उत्पन्न होने के कारण अपने गुण स्पर्श के साथ आकाश के शब्द गुण को धारण कर शब्द और स्पर्श गुण वाला हो जाता है अर्थात् पुत्र-अपने गुण के साथ पिता के गुण को भी धारण करता है, इसी

प्रकार शरीरस्थ अवगुण भी एक दूसरे से चाहे वे भौतिक हों या अभौतिक, उत्पन्न होते हैं। गीता निर्देश करती है—शरीर में कामना का स्थान, प्रकृति की आदि सूक्ष्मावस्था है जब कामना में विकार आता है तो उसका प्रथम परिवर्तन मन होता है वही प्रकृति का परिवर्तित रूप महत् है तभी अन्य परिवर्तन अपने भिन्न प्रकार बनाते हैं—तीन गुणों के उनके साथ मिल जाने से उनकी न्यूनाधिकता से सद्गुणों और अवगुणों का निर्माण होता है। यथा—

ध्यायतो विषयान्पुंसः
संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः
कामात्क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद्भवति संमोहः
संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धि नाशो,
बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।
२/६२/६३

विषय ज्ञान के साधन हैं। साथ ही बाह्य सांसारिक भोगों का निरन्तर चिन्तन करते रहने पर मानव का ज्ञान विकार युक्त होकर उनमें आसक्त हो जाता है तो भोग भोगने का राग अर्थात् लालसा उत्पन्न हो जाती है। लालसा क्रोध उत्पन्न करती है। क्रोध-संमोह का आवरण उत्पन्न करके स्मृति में भ्रम अर्थात् अस्थिरता उत्पन्न कर बुद्धिरूपी विवेक क्षमता का नाश कर डालता है। क्या है, क्या नहीं—ज्यों का त्यों बना रहता है—इस प्रकार विवेक क्षमता के अभाव में मानव जीवन एक भार बन जाता है, तब या तो जिम्मेदारियों से छिप जाने के लिये पलायन करता, उदासीन बनता, संन्यासी बनता, पागल हो जाता, अपराधी कार्यों का ताना बाना बुनता या आत्महत्या करता है। प्रश्न उठता है कि वे—

जिम्मेदारी क्या हैं—?

व्यक्ति एक इकाई है—उसकी जिम्मेदारी मात्र इतनी है कि वह व्यक्ति तत्व का विकास करे। अपने को अपने व्यक्ति तत्व को जाने समझे—और अपने विकास या जहां तक व्यक्ति तत्व को पहुँचाना है उसका केन्द्र या लक्ष्य तथा उसे प्राप्ति का मार्ग या साधन खोजना और उस पर चलने के लिये अपने को तैयार करना—इस जिम्मेदारी को निबाहना है—यह समस्त कार्य, मन, बुद्धि और विवेक द्वारा ही सब सम्भव हो सकता है—इसी व्यक्ति तत्व को जीवन का प्रथम चरण, प्रथम अध्याय मानकर पूर्व मनीषियों, वेदविदों ने विद्यार्थी जीवन के २५ वर्षों की समयावधि की कल्पना की थी।

व्यक्ति के इस विकास के पश्चात् दूसरा चरण, जो विकास के लिये व्यक्ति के सामने आता है उसमें व्यक्ति घुलमिल कर अपने स्वव्यक्ति तत्व को समाप्त कर देता

है, और इस परिवर्तन के पश्चात वह पिता बन जाता है अब उसे विद्योपार्जन के स्थान पर जीविकोपार्जन भी करना होगा । अब उसे अपने जानने के साथ परिवार प्रकृति, और संसार को जानना, समझना और उनके प्रति अपनी जिम्मेदारी को समझना और उसे निभाना है, यथा परिवार के प्रति, भरण-पोषण के लिये जीविका का साधन २-सन्तानों को योग्य व्यक्ति बनाने को शिक्षा-दीक्षा का साधन ३-प्रकृति को प्रजनन कर्म से क्रम में रखना, ४-संसार सहयोग, अनुभूति, और कर्म का क्षेत्र है अपने कर्म को तदनुरूप ही होना चाहिये—व्यक्ति के रूप में उसमें जो निर्द्वन्द्वता थी, अब पिता बनते ही उसे द्वन्द्वों से घिर जाना है । तभी उसका तीसरा परिवर्तन समाज में होता है—व्यक्ति की स्वतंत्रता खोकर वह पिता बना था परिवार का अधीश्वर होकर भी वह एक सेवक मात्र रह गया था, किन्तु इतना होने पर भी वह सुखी नहीं था, समाज ने अपने विधिनिषेधों द्वारा इतना परतन्त्र बना दिया गया कि पिता के उत्तरदायित्वों को समाज के कर्त्तव्याकर्त्तव्यों के विधिनिषेधों की सीमा में ही पूरा करने को बाध्य है, उसके राष्ट्रीय नियम उसकी सुखद सम्पूर्ण स्वतंत्रता को अपने में समेट कर मात्र एक निर्जीव कठपुतली बनाकर अपने धागे से नचाने को बाध्य करते है—गीता इसी से अपना आरम्भ करती है—

धर्मक्षेत्रे, कुरुक्षेत्रे
समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव
किम् कुर्वत संजय ।

उक्त श्लोक में दो शब्द, धर्म क्षेत्र और कुरुक्षेत्र आये हैं अन्य भाष्यकारों ने इनके जो भी अर्थ लिये हों किन्तु स्पष्ट है, वे अर्थ नहीं जो गीता का केन्द्र बिन्दु हो सकता हो । एक साथ दो क्षेत्रों का अर्थ है धर्म अर्थात् आत्मज्ञान अर्थात् आत्मतत्त्व को जानना, इसी का नाम ज्ञान अर्थात् कोऽहम् ? मैं कौन हूँ दूसरा क्षेत्र है, कुरुक्षेत्र वह कुरुक्षेत्र नहीं है, किसी स्थानान्तरगत क्षेत्र या प्रान्त विशेष न होकर कुरु अर्थात् कर्मक्षेत्र है क्योंकि धर्म के साथ किसी प्रान्तविशेष को संयुक्त कर उसे संकीर्णता की सीमा में बन्द नहीं किया जा सकता—युद्ध एक कर्म है—भले ही वह क्रूर या घोर हो—और युद्ध के नियमानुसार उसे घटित करना धर्म बन जाता है ।

योद्धा अपने आप को और युद्ध के धर्म को समझकर युद्ध में प्रवृत्त होता है । अतः गीता आरम्भ में ही अपने अध्येता को स्वाध्यायकर्ता, वाचनकर्ता को स्पष्ट कर देती है । मेरे पास ज्ञान और कर्म है और उन दोनों के प्रति समर्पित आस्था, श्रद्धा, विश्वास का पूर्ण आत्म समर्पण—सर्वधर्मं परित्यज्य मामेकं शरणाऽहम्, योग क्षेमं वहाम्यहम्, ही गीता की भक्ति है उपासना है । मानव प्रभु की ओर

से समन्वित, सार्थक, आत्मज्ञान ही नहीं एक प्रतिज्ञा है। मानव प्रभु का गुरु का इस जगत-जाल में फँसे हुये आत्मा के प्रतिनिधि अर्जुन को इस घोर कर्म से भी अपने को निष्पाप रखना था होगा, उन्होंने बताया है क्योंकि कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धिकर्म, का उद्भव ब्रह्म से है और ब्रह्माक्षर प्रतिष्ठितसृष्टि का यज्ञ-जीवन है जीवन ही यज्ञ है तथा यज्ञ भी, युद्ध है, एक कर्म है। चाहे वह घोर हो, चाहे वह सुखकर हो किन्तु वह एक कर्म है जिसका निकटतम सम्बन्ध जीवन से है। जीवन यज्ञ से है। घोर होने पर भी उसमें प्रवृत्त होना होगा इससे अपने को घोर पाप समझ बचाना पाप है किन्तु उसे कर्तव्य मात्र समझकर करने से नैवं पापमवाप्स्यसि, कभी पाप नहीं होगा।

भक्ति परम प्रभु की हो, या शैतान की, तदनुरूप श्रद्धा, विश्वास और समर्पण का नाम ही भक्ति है। भक्ति के लक्षण परिवर्तित नहीं होते, रूप परिवर्तन होते हैं। गीता उसे सात्विक और आसुरी भक्ति में विभाजित कर देती है तो भी भक्ति का मूल स्वरूप बना रहता है।

गीता एक प्रवचन है, जिसके भीतर गुरु-भाव और शिष्य भाव है। गुरु स्वयं मानव में रूप अवतरित प्रभु है और अर्जुन के माध्यम से गीता का, आत्मतत्व, कर्मतत्व, और भक्ति तत्व संसार के प्राणिमात्र को बाँटा जा रहा है। उसे पूर्ण पुरुष-पूर्ण मानव बना रहे हैं। उसका निर्माण कर रहे हैं। शिष्य भाव भी गीता की भक्ति का एक प्रकार है। अर्जुन ने निवेदन किया था कि मुझ में दो दोष आ गये हैं—कार्पण्य दोषो पहत स्वभावःदीनताख्य दोष से स्वभाव प्रभावित होकर शौर्यत्व नष्ट हुआ है तथा दूसरा धर्मसंमूढ़चेताः से धर्म-अधर्म-कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान नाश होकर मूढ़ता आ गई है अतः यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे, मेरे लिये श्रेयस्कर जो हो वह कहो—इसलिये कि शिष्यस्तेऽहं मैं तुम्हारा शिष्य हूँ, तुम मेरे सारथी हो, तुम्हीं इस जीवन रथ के चलाने वाले हो मैं तो मात्र इसमें बैठने वाला हूँ।

आत्मानं रथिनं विद्धि,
शरीरं रथमेव तु।
—क० उप०

किन्तु तुम तो आत्माओं के भी परम आत्मा-परमात्मा हो। कहते भी हो—

भ्रामयन सर्वलोकानि,
यंत्रारूढानि मायया।

अतः मैं तो केवल निमित्त कारण मात्र हूँ तुम्हारा भी तो आदेश है।

निमित्त कारण भव सव्य साचिन,
—गीता

अतः यह मेरा निवेदन अयथार्थ नहीं—

शाधि मां त्वां प्रपन्नम्
गी० २/७

अर्जुन एक कर्मशील व्यक्ति है। मनीषी या तत्व जिज्ञासु नहीं है और ऐसा करने का अवसर भी उपस्थित नहीं है। उसके सामने जो संकट उपस्थित होता है वह उन दो कारणों से है जिसकी चर्चा ऊपर की गई है कि कर्म का कोई यथार्थ नियम अर्थात् कर्म का धर्म अर्थात् ज्ञान नहीं हो रहा। कर्म करने को वह तत्पर है। कर्म के प्रति वह समर्पित भी है। अर्थात् उसमें कर्म में श्रद्धा, भक्ति है किन्तु उपरोक्त युगल दोषों के कारण सभी कुछ अज्ञान से आच्छादित हो गया है।

हृदय में स्थित रथ पर सारथी रूप से विराजमान उस महाप्रभु की वाणी के स्वरों को, झनकारों को—

× × × ×

तज्जलानिति शान्त उपासीत

—उप नि०

शान्त मन को भांति समाहित होकर सुनो। भगवान की वाणी भी है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां

(९/२२)

मेरा चिन्तन अनन्य भाव से कर।

भक्ति मार्ग में दो न्याय प्रसिद्ध हैं एक तो 'मर्कट किशोर' और दूसरा 'मार्जार किशोर' न्याय। प्रथम न्याय में उपासक अपने उपास्य की सेवा में अपने को पुत्र और उपास्य को पिता मानकर इस प्रकार प्रवृत्त होता है जैसे बन्दरिया का बच्चा—और मां बन्दरिया। वह अपनी बन्दरिया मां को पकड़े रहता है—उससे चिपटा रहता है और दूसरे बिल्ली का बच्चा म्याऊँ की आवाज कर अपनी मां को बुला लेता है। पहिले पकड़ के न्याय से उदासीन रहकर उपासक इस दूसरे न्याय से भगवान को बुलाता है जैसा कि बिल्ली का बच्चा अपनी मां को। यही भगवान का कहना है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः

पर्युपासते तेषां नित्याभियुक्तानां।

—९/२२

बन्दरिया का बच्चा मां को पकड़े रहता है परन्तु बिल्ली का बच्चा-जिसकी आवाज सुनकर मां वहां जाती है मुँह में भरकर उठाकर ले जाती है तात्पर्य है पहिला स्वेच्छा से माता पर निर्भर है और दूसरा माता की स्वेच्छानुसार माता पर निर्भर है।

अतः उपरोक्त तथ्यों पर विचार करने पर गीता अपने सम्पूर्ण प्रवचन में ज्ञान, कर्म और भक्ति के चारों ओर घूमती रहती है इसलिये उसका केन्द्रीय विषय ज्ञान, कर्म और भक्ति है।

४०

—卐 卐 卐 卐—

योगेश्वर चरित्र माला

श्री महाप्रभु की लीला : मृत्यु दण्ड से रक्षा !

❀ लेखक श्री केशव उपाध्याय

प्रस्तुत लेख में श्री महाप्रभु जी की जीवन-लीला से सम्बन्धित एक घटना का वर्णन किया गया है, जिसमें उन्होंने विलक्षण तरीके से एक विधवा ब्राह्मणी के बालक को, मृत्यु दण्ड से मुक्ति दिलायी है। घटना बिहार प्रान्त के पटना जिले की है। पटना जिले में श्री महाप्रभु जी के योग एवं प्रचार कार्यक्रमों में चमत्कारों की धाक भी जम गई थी। वहीं के एक प्रसिद्ध वकील श्री श्याम नारायण श्री महाप्रभु जी के कृपा पात्र शिष्य थे। सद्गुरुदेव श्री महाप्रभु जी की, ऐसी विलक्षण कृपा इन वकील साहब पर थी कि चलते, उठते, बैठते, कोर्ट हो या उनका अपना घर का चेम्बर, निरन्तर प्रभु के ध्यान में मग्न रहा करते थे। वे प्रायः हरदम अपने गुरुदेव भगवान से प्रार्थना किया करते थे कि हे प्रभु! एक बार पटना का न्यायालय तो आप देख लें। श्री महाप्रभु जी, उनके इस निवेदन पर प्रत्येक बार यही कहते-अरे श्यामा! कोर्ट भी कोई देखने की जगह है? कोर्ट क्यों चलूँ? कोर्ट तो सत्य को असत्य तथा असत्य को सत्य प्रमाणित करने का एक स्थान मात्र है।

(श्री महाप्रभु जी के) बार-बार इन्कार करने पर भी वकील महोदय अपने गुरुदेव से यही प्रार्थना करते कि, प्रभु! आप एक बार पटना कोर्ट में अवश्य पधारें।

प्रभु के यौगिक चमत्कारों तथा कृपा मय लीलाओं की कथा उनके अनुयाइयों द्वारा सुनकर एक विधवा ब्राह्मणी भी श्री महाप्रभु जी के चरणों में आ उपस्थित हुई। श्री चरणों में उसने विधिवत् प्रणाम किया और प्रार्थना की कि हे प्रभो! मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो। वर्ना मैं बिना मौत ही मर जाऊँगी।

जिस समय वह विधवा ब्राह्मणी श्री प्रभु चरणों में उपस्थित हुयी, उस समय वकील श्री श्याम नारायण वहाँ नहीं थे। विधवा ब्राह्मणी ने केवल प्रणाम कर इतना ही कहा कि प्रभो! मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो और विलाप कर रोने लगी। श्री गुरु ने आदेश दिया, अरे! बता तो सही, बात क्या है? क्यों रो रही है तू?

कुछ देर बाद जब महिला ने रोना बन्द किया तो सिसकते-सिसकते कहने लगी कि हे महाराज ! हमारा लड़का निर्दोष है, उसे एक कत्ल के केस में फँसाया गया है, बयान आदि हो चुके हैं। अब केवल फैसला होना शेष है। यदि आप की कृपा नहीं हुई तो दस दिनों के अन्दर ही मेरे लाल को फाँसी हो जावेगी। मैं विधवा हूँ नाथ, मेरी रक्षा करो।

श्री गुरु ने आदेश दिया कि जब तेरा लड़का निर्दोष है तो उसे कत्ल के केस में क्यों फँसाया गया है, बिल्कुल सत्य-सत्य बतलाओ। विधवा ने सिसकते हुये स्वर में प्रार्थना की कि प्रभु जी, बात यह है कि मेरे गाँव का जमींदार राणा एक लड़की की इज्जत लूटना चाहता था, मेरे बालक ने उस जमींदार राणा का खुलकर विरोध किया तथा उस लड़की की इज्जत बचाई। उस लड़की की इज्जत तो बच गई प्रभु जी ! परन्तु इस घटना के बाद से ही राणा हमारे बच्चे के पीछे हाथ धोकर पड़ गया है। उसके कहने से पुलिस वाले रोज उसे किसी न किसी केस में फँसाये रहते हैं। यह जो कत्ल का केस है, इसमें खून तो राणा ने स्वयं किया है परन्तु जबरदस्ती हमारे बच्चे को उलझा दिया है। अपने प्रभाव से राणा ने अपने कुकर्म को छिपाने के लिए पुलिस वालों को अपने पक्ष में मिला लिया है। वे राणा के खिलाफ न तो कुछ कह सकते हैं और न लिख सकते हैं। इतना कह कर महिला ने फिर सिसकते हुए प्रार्थना की कि प्रभो ! मेरी रक्षा करो वरना मेरे लाल की फाँसी की बात सुनने से पहले मैं ही मर जाऊँगी। श्री गुरु ने आदेश दिया कि, अब तू अपने घर जा, यदि तेरी बातें सत्य है तो प्रभु तेरी रक्षा किसी न किसी प्रकार अवश्य ही करेंगे। विधवा ने श्री चरणों में फिर प्रणाम किया और विश्वास करते हुये अपने घर को चली गई।

उस दिन सांयकाल सत्संग में जब श्री श्याम नारायण वकील पहुँचे तो उन्होंने अपनी नित्य वाली प्रार्थना फिर सुनाई कि प्रभु जी ! आप कोर्ट क्यों नहीं चलते हैं, एक बार चलें, आपको मैं कोर्ट दिखलाऊँ। प्रभुजी ने मुस्कराते हुए आदेश दिया, अरे श्यामा ! तू बहुत बार निवेदन कर चुका है कल हम तुम्हारा कोर्ट देखने चलेंगे। श्याम नारायण वकील की खुशी का ठिकाना नहीं। तत्काल उन्होंने यह खबर हर जगह फैला दी कि हमारे गुरुदेव परम योग-योगेश्वर श्री प्रभु जी महाराज कल कोर्ट देखने चलेंगे, न्यायालय में पधारेंगे। श्री वकील साहब ने प्रभु जी से पूछा प्रभो ! कल आप कब कोर्ट चलोगे ? श्री गुरु ने आदेश दिया तुम लोग अपने कोर्ट के समय से पहुँच जाना, मैं भी समय से ही वहाँ पहुँच जाऊँगा।

वकील श्री श्याम नारायण दूसरे दिन समय से पहले ही कोर्ट पहुँच गये। प्रभु की

चमत्कारिक घटनाओं तथा अहैतुकी कृपाओं की बात तो पटना शहर में पहले से ही धूम मचाये हुए थी, फिर वकील साहबने आकर उस में चार चांद लगा दिये। कोर्ट में जगह-जगह स्वागत द्वार बनाये गये, तोरण पताकाएं लगाई गयीं। कोर्ट कम्पाउण्ड में सभी लोग प्रभु का गुणगान कर रहे थे। पटना न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्रीहरिहरराय ने अपने पुरोहित पंडित से श्री प्रभुजी के पूजन एवं स्वागत की तैयारी खूब अच्छी प्रकार से कराई थी। वकील श्री श्याम नारायण प्रभु के आगमन की प्रतीक्षा में तल्लीन थे। सब से यही कहते थे, कि आप सब अच्छी प्रकार से उनकी आराधना करना, जो वे कह दें, वह अवश्य ही होगा। हमारे श्री गुरुदेव परम योग योगेश्वर है। परन्तु यह तथ्य किसी को पता नहीं था कि अनाथ नाथ आज कोर्ट क्यों देखने आ रहे हैं ?

स्वतंत्र ईश्वर, श्री महाप्रभु जी, अपने नियत समय पर पटना कोर्ट में आ पधारे। उनका पूजन तथा स्वागत करने के लिये मुख्य न्यायाधीश के पुरोहित थाल लिये आगे आये पटना कोर्ट का पूरा प्रांगण प्रभु के जय-जयकारों से प्रतिध्वनित हो रहा था। ज्यों ही पुरोहित जी ने श्री महाप्रभु जी को तिलक लगाना चाहा, श्री मुख ने आदेश दिया तू! मुझे तिलक न लगा क्योंकि तुझे कुष्ठ रोग है। ब्राह्मण बेचारा हक्का बक्का। मुख्य-न्यायाधीश श्री हरिहर राय को जो एक नेक नीयत और ईमानदार जज थे, यह बात बहुत बुरी लगी। उन्होंने सोचा, कैसा महात्मा है, हमारे पुरोहित को कुष्ठ रोगी कहता है। उन की भावनाओं को देखकर श्री मुख ने आदेश दिया, पंडित जी! ग्रहण में जज साहब से दान लेकर, बिना उसका प्रायश्चित्त किये तुम ने उसका भोजन किया है। उसी पाप के परिणाम स्वरूप तुम्हें कुष्ठ हो गया है। पुरोहित पंडित ने श्री चरणों में प्रार्थना की कि प्रभुजी यह बात तो सत्य है कि जज साहब के ग्रहण दान को बिना प्रायश्चित्त किये मैंने पाया है, परन्तु यह बात सत्य से परे है कि मैं कुष्ठ रोगी हूं। श्री मुख ने आदेश दिया अरे ब्राह्मण अपना कुर्ता हटाकर अपनी पीठ देख ले या किसी से दिखा ले। पीठ में तुझे कुष्ठ रोग है। पुरोहित पंडित ने अपना कुर्ता हटाकर स्वयं अपने हाथ से स्पर्श किया तथा जिज्ञासावश और लोगों ने भी उसकी पीठ देखी और कहा है तो। पंडित बेचारा अपना मुख लटकाये पूजा का थाल हाथ में लिये वहां से खिसक गया। सब लोग इस बात पर आश्चर्य कर रहे थे कि बिना अन्तर्ज्ञान के यह कैसे बतला सकते थे कि पुरोहित को कुष्ठ रोग है। जज साहब भी मन ही मन यह विचार कर रहे थे कि श्री महाप्रभु जी ने उन्हें इंगित करते हुए कहा कि तुम भी कम पापी नहीं हो। न जाने कितने निर्दोष लोगों को

मृत्यु दण्ड व कारावास तुमने दिया है।

वकील श्री श्याम नारायण ने अपने कुछ साथी और सहायक वकीलों के साथ प्रभु का आरती पूजन किया तत्पश्चात् उपस्थित अन्य सभी आध्यात्म प्रेमियों ने भी प्रभु जी का विधिवत् आरती पूजन किया। सब लोगों द्वारा आरती-पूजन कर लेने के बाद मुख्य न्यायाधीश श्री हरिहर राय ने प्रार्थना की कि प्रभु मुझे एकान्त में आप से कुछ प्रार्थना करनी है। वे प्रभु जी को अपने एकान्त कक्ष में ले गये और प्रार्थना की कि, प्रभु जी मैंने कौन सा पाप किया है जो आप ने मुझे पापी कहा है। मैंने आज तक रिश्वत लेकर कोई न्याय नहीं किया है। मेरा क्या दोष है, कृपया बताने का कष्ट करें। श्री गुरु ने उपदेश किया, तुम्हारे हाथ से परसों एक कत्ल के केस का फैसला होना है जिसमें एक निर्दोष ब्राह्मण बालक को तुम मृत्यु दण्ड दोगे। कत्ल तो उसी गांव के राणा नामक जमींदार ने किया है परन्तु ब्राह्मण बालक नाहक फंसाया गया है। इस बात की सत्यता की जानकारी तुम अनेक प्रकार से कर लो। मैं यह नहीं कहता कि तुम उसे सजा न दो, परन्तु यदि वह ब्राह्मण बालक निर्दोष है तो उसे सजा नहीं मिलनी चाहिए। इसीप्रकार अनेक निर्दोष लोगों को सजा दे-देकर तुम पापी बन गये हो।

प्रभु का उपदेश सुनकर जज हरिहर राय महान आश्चर्य में पड़ गये। गवाहों के बयान से यह बात बिल्कुल निश्चित है परसों ब्राह्मण बालक को फांसी की सजा सुनानी ही पड़ेगी। केवल एक दिन का समय शेष है, इनक्वायरी किससे कराऊँ। उन्होंने प्रभु जी से प्रार्थना की कि इसकी सत्यता की जांचमैं स्वयं करूँगा।

उनके इस आश्वासन पर प्रभुजीवहां से चलकर अपने प्यारे बच्चे वकील श्यामनारायण केसाथ आये। जज साहब भी बिना किसी केस को सुने अपने क्वाटर आ गये। रास्ते भर सोचते रहे, सत्यता का पता कैसे चले? सायंकाल अन्धेरे में उन्होंने मूर्ख देहाती किसान का वेश बनाया। मारकीन का कुर्ता, मोटी धोती नकली मूँछ, लाठी आदि लेकर बिना किसी को बतलाये कत्ल के गांव में चले गये। वहाँ जमींदार राणा के घर भी पहुँच गये। दरवाजे पर महफिल लगी थी तथा राणा बीच में बैठा था। जाते ही कृषक वेशधारी जज साहब ने कहा, जै राम जी की बेटा, जै राम, जै राम। राणा उठकर, उन्हें बैठने का अनुरोध करते हुये बोला, कहाँ से आये हो दद्दू। उन्होंने उत्तर दिया, अब तू क्या पहचानेगा, बेटा। जब से भैया गुजर गये, इधर आने का मन ही नहीं करता। भैया (राणा का पिता) हमारे लंगोटिया यार (मित्र) थे। राणा की आत्मीयता कुछ बढ़ी। फिर किसान वेशधारी जज ने कहा, चलो एकान्त में बातें करें। उन्होंने कहा कि भैया से हमेशा हम रात में एकान्त में ही बात किया करते थे। एकान्त में

× × × ×

जाकर उन्होंने कहा कि कहो बेटा ! क्या हाल-चाल है, उसने कहा ठीक है। दद्दू ! आप लोगों का आशीर्वाद चाहिये। उसने कहा, अपना बताओ दद्दू। उन्होंने कहा, क्या बतलाऊँ बेटा, भैया के न रहने से अपना जीवन भी अब अनाथ हो गया है। अब तो रह-रह कर वही बातें याद आती रहती हैं। भैया (राणा के पिता) की खूब चलती थी। न जाने कितने कत्ल के केस हम लोगों ने किया होगा परन्तु आज तक किसी को कुछ पता नहीं चला। वह ठाकुरों का जमाना था। श्री राणा ने भी अपना तारीफ स्वयं आरम्भ की। बोला दद्दू उनकी चलाई परिपाटी आज भी चल रही है। करीब एक घन्टे के वार्तालाप के दौरान राणा ने स्वयं अपने मुख से यह बात कह दी कि दद्दू हमने अपनी पिस्तौल से अमुक आदमी को मारा था, परन्तु अपने पुराने दुश्मन ब्राह्मण को ऐसा फँसाया है कि मत पूछिये। एक भी गवाह उसके पक्ष में नहीं गया। परसों हरिहर राय जज को उस पंडित को मृत्यु दण्ड देना ही पड़ेगा। उसकी फाँसी के बाद हमारे सारे शत्रु एकदम साफ हो जावेंगे। सत्य तथ्य की जानकारी हो जाने के बाद कृषक वेषधारी जज ने बात को दूसरा रुख प्रदान किया। करीब आधे घन्टे तक और बात की और बोले अच्छा बेटा ! हम अब चलें। राणा बोला, दद्दू आज नहीं जाइये, यह भी तो आप का ही घर है, उन्होंने कहा कि बेटा ! घर पर तुम्हारे भाई इन्तजार कर रहे होंगे, जब तक नहीं जायेंगे, तब खाना नहीं खायेंगे, राणा कुछ दूर पहुँचाने आया। उसने प्रार्थना की कि दद्दू ! कभी-कभी आ जाया करो। कृषक वेषधारी जज ने कहा, अवश्य-अवश्य। जब मैं समय निकाल कर आया करूँगा, बेटा ! इतना कहकर जज साहब वहाँ से चले, अपने घर आ गये। श्री प्रभु जी की बातों को बार-बार याद कर रहे थे कि नाहक बेचारा ब्राह्मण फाँसी के फन्दे से लटक जाता।

श्री हरिहर राय जज ने दूसरे दिन इस केस के फैसले (निर्णय) को लिखा अपने घर पर ही तैयार किया। तीसरे दिन अपने न्यायालय जाकर फैसला सुनाया। जिसका कानूनी के बालक को अपने स्पेशल अधिकार का प्रयोग करते हुये बिल्कुल अभियोग मुक्त कर दिया। फैसला सुनाने के तत्काल बाद अपनी कलम तोड़ दी तथा मुख्य न्यायाधीश पद से स्तीफा देकर, अकारण दयालु, परम योग योगेश्वर करुणानिधान श्री महाप्रभु जी के चरणों में उपस्थित होकर प्रणाम किया। अब हम भी अपने आराध्य श्री तथा अपने दादा गुरुदेव जी के युगल चरणों में कोटिश साष्टांग प्रणाम कर लेख को यहीं विराम देते हैं।

पत्रं-पुष्पं-फलं-तोयम्

संकलन—शांति

प्रणम्य शिरसा विष्णुं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम् ।

नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम् ।

तीनों लोकों के स्वामी विष्णु भगवान को सिर से प्रणाम कर, अनेक शास्त्रों से उद्धृत राजनीति विषयक बातों को मैं कहता हूं ।

× × ×

अधीत्येदं यथाशास्त्रं नरो जानाति सत्तमः ।

धर्मोपदेशविख्यातं कार्याकार्यं शुभाशुभम् ॥

जो व्यक्ति शुभ और अशुभ इस नीति के विषय को शास्त्रों के अनुसार अध्ययन करके जान लेता है वह उत्तम गिना जाता है ।

× × ×

तदहं संप्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया ।

यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते ॥

मैं लोगों की भलाई की बात कहूँगा जिसको समझकर मनुष्य सर्वज्ञ होता है ।

× × ×

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टा स्त्री भरणेन च ।

दुःखितैः संप्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति ॥

मूर्ख शिष्य को उपदेश करने से, कर्कशा स्त्री का पोषण करने से, दुखियों से व्यवहार करने से पण्डित जनों को भी दुख भोगना पड़ता है ।

× × ×

दुष्टाभार्या शठंमित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः ।

ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ॥

दुष्टा स्त्री, शठ मित्र, उत्तर देने वाला नौकर और जिसके घर में सांप रहता हो उस की निश्चय ही मृत्यु होती है ।

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥

आपत्ति काल के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए, धन से स्त्री की रक्षा करनी चाहिये धन और स्त्री से सब काल में अपनी रक्षा करनी चाहिए।

× × ×

आपदर्थे धनं रक्षेच्छ्रीमतश्च किमापदः ।
कदाचिच्चलिता लक्ष्मीः संचितोऽपि विनश्यति ॥

आपत्ति काल के लिए धन का बचाना बहुत जरूरी है। कारण कि दैवयोग से श्रीमानों पर भी आपत्ति आ जाती है। लक्ष्मी चंचला है अतः संचित धन भी चला जाता है।

× × ×

यस्मिन्देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवः ।
न च विद्यागमोऽप्यस्ति वासं तत्र न कारयेत् ॥

जिस देश में सम्मान न हो, जीविका न हो, भाई बन्धु न हो विद्या की प्राप्ति न हो, वहां कदापि नहीं रहना चाहिए।

× × ×

धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पंचमः ।
पंच यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत् ॥

जहां धनवान व्यक्ति, वेदपाठी ब्राह्मण, राजा नदी और वैद्य ये पांच न हों वहां एक दिन भी न रहना चाहिए।

× × ×

लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता ।
पंच यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात्तत्र संगतिम् ॥

जहां आजीविका, भय, लज्जा, चतुरता और त्याग-भाव ये पांच गुण न हों ऐसे लोगों के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिए।

× × ×

जानीयात्प्रेषणे भृत्यान् बान्धवान् व्यसनागमे ।
मित्रं चापत्तिकाले तु भार्यां च विभवक्षये ॥

सेवा के अवसर पर सेवकों की, दुःख के समय बान्धवों की आपत्ति काल में मित्र की, नष्ट हो जाने पर पत्नी की परीक्षा होती है।

जीवनी शक्ति और उनके वास्तविक कार्य

श्री योगी हृदयनारायण जी,

इस शरीर में जीवनी शक्ति मुख्यतः तीन प्रकार के कार्य करती है। पहला शरीर में भोजन देने पर उसका पाचन करती है, दूसरा हमारे दैनिक जीवन से सम्बन्धित श्रम के कार्य सम्पन्न करती है और तीसरा शरीर में एकत्रित अवांछित विजातीय द्रव्य (मल) का निष्कासन करती है। इस जीवनी शक्ति की कुछ स्वभावगत विशेषताएँ भी हैं। उनमें एक यह भी है कि इन तीनों कार्यों में इसका उपयोग जाये पैसे की भाँति शक्ति की भाँति नहीं किया जा सकता जिससे जीवनी शक्ति की मात्रा को तीन भागों में बाँटकर एक ही समय में तीनों काम किये जा सकें। बल्कि इसका उपयोग एक नौकर की भाँति किया जा सकता है, जो एक ही समय में एक ही कार्य भली प्रकार से कर सकता है। उदाहरणार्थ आपने कभी न कभी यह अनुभव अवश्य किया होगा कि जब आप भोजन करने के बाद काम पर जाते हैं, तो आलस्य का अनुभव करते हैं और जब किसी कारणवश भोजन किये बिना काम करने जाना पड़ता है तो काम पहले की अपेक्षा अधिक सुविधापूर्वक और अच्छे ढंग से सम्पन्न होता है। इसका कारण केवल यही है कि जब हम भोजन करते हैं तो जीवनी शक्ति उसे पचाने के काम में लगाना चाहती है और हम उसे श्रम के काम में लगाना चाहते हैं। इसी खींचातानी में दोनों में से कोई काम नहीं हो पाता और जब हम बिना भोजन किये श्रम के काम करते हैं तब जीवनी शक्ति केवल श्रम के काम में ही लगजाती है और काम बहुत अच्छा होता है।

इस जीवनी शक्ति की दूसरी विशेषता चारित्रगत भी है। चूँकि वर्तमान पीढ़ी के मानव के शरीर में मल का संचय बहुत अधिक हो गया है इसलिये जीवनी शक्ति को जब भी अवसर मिलता है वह स्वतः मल निष्कासन के कार्य में जुट जाती है। इसलिये अगर हम भोजन न करें तो पाचन कार्य से मुक्त जीवनी शक्ति स्वतः मल निष्कासन के कार्य में लग जाती है। आयुर्वेद में—

आहारं च पचति शिखि दोषानहारं वर्जितः

सूत्र में इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। शिखि (जठराग्नि के रूप में जीवनी शक्ति) भोजन का पाचन करती है। परन्तु

आहार न देने पर वही जीवनी शक्ति मल निष्कासन (रोग के पचाने) का कार्य करती है। अब अगर शरीर में मल का संचय अधिक हुआ और उसको निकालना भी अत्यन्त कठिन हुआ हो तो जीवनी शक्ति स्वभावतः यह चाहेगी कि पाचन कार्य से मुक्ति मिलने के साथ-साथ उसे श्रम के कार्य से भी मुक्ति मिले, जिससे मल निष्कासन के आवश्यक कार्य को वह पूरे तौर पर सम्पन्न कर सके। ज्वर का होना इसका एक अच्छा उदाहरण है जब जीवनी शक्ति यथेष्ठ शक्तिशाली होती है और मल निष्कासन का कार्य और अधिक समय तक स्थगित रखना हानिप्रद हो जाता है, तब जीवनी शक्ति ज्वर का सहारा लेती है। ज्वर में जीभ का स्वाद ऐसा हो जाता है कि किसी प्रकार के भोजन के प्रति रुचि नहीं रह जाती है और शरीर में अधिक उष्णता के कारण श्रम से कार्य करना भी सम्भव नहीं रहता। इस प्रकार इन दोनों कार्यों में लगने वाली जीवनी शक्ति भी मल निष्कासन के कार्य में लग जाती है। आपने यह भी देखा होगा कि पसीने अथवा शौच के द्वारा ज्योंही कुछ मल बाहर निकल जाता है ज्वर स्वतः ही उतर जाता है। अब पुनः ऊपर के तारतम्य में सोचिये कि यदि हमने एक-दो दिन भोजन नहीं किया और जीवनी शक्ति श्रम के काम में लगने वाली शक्ति को भी लेकर मल निष्कासन के कार्य में जुट गई तो फिर हमें श्रम के कार्य के लिये शक्ति उपलब्ध नहीं होगी, जिसे हम निर्बलता की संज्ञा देते हैं। भोजन न करने पर निर्बलता की प्रतीति का रहस्य यही है। अब आइये इस रहस्य को भी सुलझायें कि जब भोजन न करने से निर्बलता आ जाती है तो फिर भोजन करने पर तुरन्त श्रम के कार्य के लिए शक्ति कहां से आ जाती है। क्योंकि उस अवस्था में तो जीवनी शक्ति के सामने मल निष्कासन का पहला कार्य तथा भोजन के पचाने का दूसरा कार्य भी रहता ही है।

ऊपर हम निवेदन कर चुके हैं कि जीवनी शक्ति की एक विशेषता यह है कि वह पाचन, श्रम के कार्य एवं मल निष्कासन इन तीनों कार्यों में से एक समय में एक ही काम मुख्य रूप से करती है और यह भी कह चुके हैं कि भोजन न करने पर उससे बची हुई शक्ति तुरंत मल-निष्कासन के कार्य में लग जाती है। हम इसमें स्वतन्त्र नहीं हैं कि शरीर में मल के रहते भोजन न करने पर पाचन कार्य से बची हुई शक्ति को श्रम के कार्य में लगा सकें। परन्तु हम इस बात में स्वतन्त्र हैं कि जब जीवनी शक्ति पाचन का कार्य कर रही हो तब उसे अपनी इच्छा से (पाचन का कार्य स्थगित कर) श्रम के कार्य में लगा सकें। जीवनी शक्ति की स्वभावगत विशेषता यह भी है कि जब उसके सामने पाचन कार्य रहता है तब वह मल-निष्कासन का

काम नहीं करती। इसी कारण भोजन न करने से दुर्बलता की प्रतीति के बाद जब भोजन किया जाता है तब जो शक्ति मल निष्कासन का कार्य छोड़कर भोजन पचाने में लग जाती है और हम चूँकि जीवनी शक्ति से पाचन या श्रम के कार्य लेने हेतु स्वतन्त्र हैं, इसलिये हम पाचन के कार्य को स्थगित कर श्रम का कार्य करने लगते हैं और उस भ्रम में पड़ जाते हैं कि भोजन करने से ही हमें शक्ति प्राप्त हुई है। वर्तमान विज्ञान भी इस बात का समर्थन नहीं करता कि भोजन करने के तुरन्त बाद ही उससे ऊर्जा (जीवनी शक्ति) उत्पन्न हो सकती है। आज भी नित्य लाखों करोड़ों व्यक्तियों को हम प्रतिदिन सुबह ९ बजे भोजन कर श्रम के कार्य करते हुये देखते हैं, उसका भी यही कारण है कि हम अपनी इच्छानुसार पाचन के कार्य में लगी हुई शक्ति को उस काम से विरत कर श्रम के कार्य में लगा देते हैं। अब शायद स्पष्ट हो गया होगा कि भोजन न देने से अपना शक्ति क्यों श्रम के कार्य के लिये उपलब्ध न होकर श्रम शक्ति को भी मल निष्कासन में लगा देती है और हमें दुर्बलता की प्रतीति होती है परन्तु ज्योंही हम भोजन कर लेते हैं वह मल निष्कासन के कार्य से विरत होकर पाचन के कार्य करने लगती है और तब हम पाचन के कार्य को भी स्थगित कर उसे श्रम के कार्य के लिये उपलब्ध कर इस भ्रम के शिकार हो जाते हैं कि भोजन न करने से शक्तिहीनता आई और भोजन करने से शक्ति प्राप्त हुई। —क्रमशः

❀ कर्मयोगी ❀

फल की इच्छा छोड़कर अनासक्त भाव से कर्तव्य-कर्म करने वाला मनुष्य सदैव अपना सन्तुलन बनाये रखता है अर्थात् समदृष्टि रह सकता है। कर्मयोगी, विवेक, साहस, धैर्य और दृढ़ता से युक्त होकर स्वधर्म का पालन करता है। वह फल के सम्बन्ध में चिन्ता नहीं करता, क्योंकि फल सदैव ईश्वराधीन होता है। कर्मयोगी प्रभु के विश्वास एवं भक्ति में दृढ़ रहता है तथा कभी निराश नहीं होता। वह कर्म के फल को ईश्वर का विधान मान-कर स्वीकार करते हुए सन्तोष धारण कर लेता है। कर्मयोगी आत्मज्ञान का सहारा लेकर सत् और असत् का भेद करके इन्द्रियों के भोग्य पदार्थों के प्रति अनासक्त हो जाता है। वह विषयों का सेवन एवं उपभोग करता है, किन्तु उनमें लिप्त नहीं होता। वह ज्ञान और भक्ति के सहारे विवेक द्वारा मन एवं इन्द्रियों का संयम कर लेता है। संसार के समस्त भोग बिना विचलित हुए उसमें समा जाते हैं। कर्मयोगी को कामनाएं नहीं सताती।

—श्रुति-सार

नमन शत बार है

स्व० श्री बनवारीलाल चतुर्वेदी

हे परम पूज्य कृपालु गुरुवर
दीन के सब दुख हरो ।
अज्ञानता मम दूर कर
हिय ज्ञान देकर सुख करो ॥

तुम को मनुज संसार में प्रभु
मोह मद में भूलता ।
इस हेतु फिर भव-ताप सह
आवागमन में झूलता ॥

हे सिद्धि दाता यो—लायक
परम सुख दायक हरे ।
होते तुम्हारे काम है
जग में अनूठे गुण भरे ॥

गाथा किसी जग में तुम्हारी
अति अनन्त अपार है ।
हे नाथ मेरा चरण कमलों में
नमन शत बार है ।

प्रेषक:— प्रो० रुद्रदत्त चतुर्वेदी, हल्द्वानी

—: आठ फूल ही तो हैं :—

❀ श्री विष्णुप्रसाद व्यास

परम शान्ति की खोज में सारा संसार ही निरत है। पूरनचन्द और सत्येन्द्र भी यदि इसी की होड़ में घर से निकले तो उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। दोनों ही संस्कारी आत्माएं प्रतीत होती थीं। उनमें से एक हरियाणा का था और दूसरा उत्तर प्रदेश का। पूरनचन्द में श्रद्धा विश्वास विशेष रूप से उग्र थे। सन्त महात्माओं और हनुमान जी के प्रति उसे अगाढ़ प्रेम था। जहां कहीं भी कोई सन्तपुरुष दिखाई देते तो भागकर उनके चरण छू लेता। सत्पुरुष भी बड़े प्रेम से उसे आशीर्वाद दे देते थे। शान्त वीतराग तथा त्यागी महापुरुषों के आशीर्वादों में सदा स्नान करने वाला पूरन चन्द एक समृद्ध कुलीन परिवार में उत्पन्न हुआ था। घर में धन-धान्य की कोई कमी न थी। परन्तु वैराग्य प्रकृति की एक ऐसी देन होती है जिसके आगे संसार की माया कोई भी महत्व नहीं रखती। भगवान बुद्ध को राजमहलों का ऐश्वर्य बांध न सका। उच्च विप्र कुल में पैदा हुआ मूल शंकर चौदह वर्ष में ही सारी जायदाद को लात मारकर पूर्ण सद्गुरु की तलाश में चौदह वर्षों में निकल गया और दयानन्द बन गया।

पूरनचन्द में भी ऐसी ही संस्कारी आत्मा थी।

उधर उत्तर प्रदेश के आगरा जिले के किसान का पुत्र सत्येन्द्र जब देखो तब एकान्त में बैठा किसी न किसी विचार में लीन रहता, परिवार के लोग उसकी ऐसी प्रकृति देख कर पूछते कि तुझे क्या हो गया है? न तो तू कुछ ढंग से खाता पीता है और न किसी आमोद प्रमोद में भाग लेता है। चाहता क्या है तू? मांग कर हम तत्काल पूरा कर देंगे, परन्तु सत्येन्द्र बाल बढ़ाये, दाढ़ी रखाये एकांत में बैठा कुछ सोचता रहता।

कुदरत का खेल-दोनों ही एक आश्रम में आ पहुँचे वहां ही दोनों ने एक उच्चकोटि के योगीराज जी से दीक्षा ले ली। दोनों की प्रकृति में बड़ा साम्य था। एक ही कमरे में उन्हें आवास मिल गया। स्वाध्याय, भजनाभ्यास, सत्संग और आरती पूजन में उन्हें विशेष आनन्द आता था। सेवा कार्यों में अग्रणी रहा करते थे।

एक दिन सिद्ध गुफा के पीछे नीम के नीचे बैठे हुए दोनों यही चर्चा कर रहे थे कि हरि-भक्ति और गुरु-भक्ति में क्या अंतर है? किस भक्ति से जीवन में सरलता से निखार

जा सकता है ? भक्ति तो हम दोनों को बड़ी प्रिय है हां। इस पर पूरनचन्द ने कहा कि हरि भक्ति में निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना की जाती है। उसी के अनन्त गुणों का गम्भीर चिन्तन-उसके ज्योतिर्मय स्वरूप का ध्यान-अपने अन्तर्मन में उसकी समीपता प्राप्त करने की साधना की जाती है। ब्रह्म की उपासना ही वास्तव में मानव जन्म का चरम लक्ष्य है।

" उपासनाः ब्रह्मण प्राक् "

अर्थात् सर्व श्रेष्ठ उपासना उस निर्विशेष ब्रह्म की है। जीवात्मा को अपने स्वरूप में लौटाने के लिये परमात्मा का ही आधार लेना पड़ता है। जीव उस परमेश्वर का ही तो अंश है। इसलिये अंश को अपने अंशी से ही प्यार हो सकता है। संसार और संसार के पदार्थों में अपना ध्यान फैलाना अज्ञान है।

सत्येन्द्र—कठिनाई तो यही है कि हम जीवों की बुद्धि में निर्गुण निराकार ब्रह्म का समावेश नहीं हो पाता। उसका ध्यान ठहरता ही नहीं। जो शक्ति है ही अगोचर जिस तक शरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि की पहुँच नहीं हो सकती, उसे हम कैसे ग्रहण कर सकते हैं ? अब जो ब्रह्म आनन्द रूप है, सर्व शक्तिमान और सर्वज्ञ है, वह अगोचर-न वह हमें दिखाई देता है—न हम से बात करता है। हम कभी धर्म की मर्यादाओं को तोड़कर अपनी मनमानी करने लगते हैं तो वह रोकता नहीं—फिर उसको केवल मान लेने से तो हमारा कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। इधर यदि उसके इस संसार को देखते हैं—यह बड़ा ही लुभावना है। इसमें यदि हम अपने मन को उलझाते हैं तो एक नया बखेड़ा खड़ा हो जाता है। वह यह कि संसार के पदार्थ हमारा साथ नहीं निभाते। हम इन्हें यदि अपने अन्तर्मन में बसा लेते हैं तो ये हमें पूर्ण सुख नहीं दे सकते और इनके संस्कार भरी जीवों में चौरासी लाख योनियां चिपटी पड़ी होती हैं। इनको अपनाने से सदा यह भावना मन में आकुल-व्याकुल करती रहती है कि ये हमारे नित्य के साथी नहीं हैं।

पूरनचन्द जी—तब इस अशान्त मन को किस प्रकार शान्त किया जाय ? ब्रह्म और उसका यह ब्रह्माण्ड इन दोनों में कोई आकर तरल मेल करा दे ? ऐसा कोई मार्ग बतावें जिससे यह हमारा तीनों गुणों और पांच भूतों से बना हुआ मन स्थिर हो जाय ? चित्त की विक्षिप्त वृत्तियां एक केन्द्र पर स्थित हो जायें ?

पूरनचन्द:—सत्येन्द्र ! इसी समस्या को सुलझाने के लिये ही तो वह निर्गुण—निराकार ब्रह्म सत्ता सगुण बनकर हमारी धरती पर अवतार ले लेती है। सद्गुरु के स्वरूप में ही निराकार को देखा जा सकता है। वे अपनी अलौकिक सामर्थ्य से जीवों को संसार की मिथ्या माया के तत्व का बोध कराते हैं।

इन नश्वर और अनित्य पदार्थों में अड़े हुए हमारे मन को अपने चरण कमलों में लगाते हैं। पग-पग पर हमें अपने सदुपदेशों से इस मिथ्या माया के चंगुल से हमारा दामन छुड़ाकर अपने निर्मल स्वरूप के ध्यान में लगाते हैं। इनके स्वरूप में ही हम उस निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार बड़ी सुगमता से कर सकते हैं।

सन्त सद्गुरु जिस पर कृपालु हो जाते हैं, उसके अन्दर में बैठे हुए काम, क्रोध, लोभ-मोह-अहंकार और मात्सर्य इन दारुण शत्रुओं को भीतर में ही दग्ध कर डालते हैं। सच्चे अर्थों में वे मन के पुजारी जीवों को गुरुमुखता का यह पाठ पढ़ाते हैं, जिससे उसकी अन्तर्दृष्टि खुल जाती है। वह साधक फिर राजा जनक के समान विश्व की मनोमोहनी माया में बैठा हुआ भी अपने प्रभु के साथ खेला करता है। वे अष्टावक्र जैसे ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु थे, जिन्होंने राजा जनक जी को राजर्षि बना दिया था। गुरु रामानन्द जी की ही वह एक मात्र दृष्टि थी जिसके मिलन मात्र से भक्त कबीरदास परम सन्त पदवी के अधिकारी बनने और आनन्द-विभोर होकर गाया करते थे—

उठत–बैठत कछु उठाने ।
कहु कबीर हम तेहि ठिकाने ॥

हमारा परम सौभाग्य है जो हरियाणा और उत्तर प्रदेश से एक ही स्थान पर सद्गुरुदेव जी ने बुला लिया है। उनकी ही दृष्टि की तड़प हम दोनों के मन में हर समय रहनी चाहिए। किन्तु सत्येन्द्र! गीता का यह श्लोक कभी भुलाने योग्य नहीं है—

यत्र योगेश्वर कृष्णो
यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्री विजयो भूति-
र्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥
गीता अ० १८ श्लोक ७८

जहाँ योग योगेश्वर श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज हैं सुधारस बरसाने वाले और धनुष और बाण कन्धों पर लिये ठहरा हो अर्जुन जैसा परम भक्त, वहां श्री विजय और कल्याण का ही आना अवश्यम्भावी है—ऐसा मेरा दृढ़ विचार है—यह वचन महामनीषी संजय जी का है।

अब हमें भी सन्त सद्गुरुदेव जी प्राप्त हो गये हैं तो हम धनुर्धारी बनें अर्थात् आलस्य, प्रमाद-अविश्वास इन सब दुर्गुणों को झटका दें और उन आठ फूलों के बीज अपने अन्तर्मानस की क्यारी में डाल लें—जिन की भीनी-भीनी परिमल से हमारा जीवन सौरभमय हो जायेगा। चरित्र उज्ज्वल और श्री गुरुदेव की प्रसन्नता प्राप्त होगी। इसके लिये हमें गुरुमुख बनाना होगा। श्री गुरुदेव जी की आज्ञा और मौज में रहना होगा।

१—अहिंसा

श्री भगवान के चरण कमल में समर्पित किये जाने वाला पहला फूल "अहिंसा"

कहा गया है। अहिंसा एक ऐसा पुण्य है जो कभी भी मुरझाता नहीं। हिंसा क्या है? किसी प्राणधारी के प्राणों का अपहरण करना प्राण किसे प्रिय नहीं है? जीव मात्र को अपने प्राण प्यारे लगते हैं। वह सब कुछ दे देना चाहेगा। किन्तु प्राणों की बलि देने के लिये वह उद्यत न होगा। इसलिये—

आत्मौपम्येन भूतानि
यः पश्यति स पण्डितः।

विवेकी विचारवान पुरुष वही है जो सम्पूर्ण प्राणधारियों के हृदय में अपने प्राणों की स्पन्दन करता हुआ देखता है—

"मा हिंस्यात्सर्व भूतानि"

किसी प्राणी को भी हिंसा न करो। यह वेदानुशासन है अहिंसा क्या है?

तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा
सर्व भूतानामनभिद्रोहः।

पातंजलयोग दर्शन अ० २ सूत्र ३०

सब प्रकार से सब काल में किसी भी प्राणी से द्रोह या द्वेष न करना "अहिंसा" कहाती है।

अहिंसया च भूतानाम
मृतत्वाय कल्पते।

प्राणियों की हिंसा न करने से मनुष्य मोक्ष पद का अधिकारी बनता है।

अहिंसा की महिमा गान करते हुए सभी धर्म ग्रन्थ नहीं अघाते—

प्रविशन्ति यथा नद्यः
समुद्र मृजुवक्रगाः।
सर्वेऽधर्मास्च हिंसायां
प्रविशन्ति तथाद्रुतम्॥

पद्मपुराण उत्तराखण्ड २०३/६

जैसी टेढ़ी चाल चलने वाली नदियां समुद्र में प्रवेश करती है—वैसे ही सब अधर्म हिंसा में समा जाते हैं। अर्थात् "अहिंसा सब से श्रेष्ठ धर्म है।" जीवन का सौन्दर्य प्राण हरण में नहीं। प्राण रक्षण में है। हमें सुरक्षण करना है। विश्व पिता को जिसकी यह सम्पूर्ण अद्भुत सृष्टि हमारे सामने अपने क्रिया-व्यापार में रत है। हम चाहते क्या? शान्ति? किस की शान्ति? अपने मन की और चित्त की। यदि हम दूसरे के मन और चित्त की शान्ति चाहने लगें तो क्या कोई अधर्म या पाप हो जायगा?

अन्तरात्मा से हमें यही प्रत्युत्तर आयेगा कि नहीं पाप न होगा अपितु पुण्य होगा और महापुण्य होगा। जो जिस कर्म से अपने को; दूसरे को अथवा सर्व विश्व को शान्ति मिलती हो वह कर्म क्या मनुष्य के करने योग्य नहीं? मानव वस्तुतः है भी वही जो प्राणिमात्र की भलाई करे। हिंसा-पीड़ा दुःख-हत्या ये शब्द तो पशु जगत की पूंजी है।

मानव संसार में तो प्रेम, प्यार, दया, करुणा, क्षमा और सहानुभूति जैसे रत्न जगमगाया करते हैं।

परमात्मा का स्वरूप प्रेम है। सृष्टि का कण-कण प्रेम की तानों पर गूंज रहा है। जब हर एक प्राणी प्रेम का भूखा है तब अन्य पशु पक्षी, कीट, पतंगादि की तो बात ही क्या है, सच पूछो तो सूर्य, चांद और सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल प्रेम की डोरी में बन्धे हुए ही भुवन मण्डल को प्रकाश और ताप दिया करते हैं। आठों पहर पवन-देव बिना किसी निद्रा और तन्द्रा के विश्व की सेवा में जो तत्पर हैं तो किस भावनासे प्रेरित होकर। केवल प्रेमभाव से ऐसी स्थिति में सिद्धान्त यही स्थिर किया गया है कि अपना कर्त्तव्य कर्म शुद्ध भावना करना चाहिये।

उसमें जैसा भी ऊंच नीच होगा उसके अनुसार फल-प्राप्त तो करना ही होगा। प्रयत्न यही रहना चाहिये कि अन्तरात्मा अधर्म अथवा हिंसा करने के कारण मलिन न होने पावे। दूसरों का अहित करने की कल्पना भी मन से न उठावें।

नरदेह पाने का परम लक्ष्य यही है कि अब हम इस नर शरीर में नारायण बन जायें नारायण बनने के लिये जरूरी है कि जो भी विधान विधाता ने इस भूमण्डल पर रहने के लिये बनाये हैं उनको भली भांति पढ़ें—समझें और करें। परम सन्त कबीर साहब क्या रुचिर सीख देते हैं।

सहज-सहज सब कोइ कहे,
सहज न चीन्हे कोय।
जो सहजें साहिब मिलें,
सहज कहावे सोय॥

जिन कर्मों से सहज स्वभाव वश पर-मात्मा की प्राप्ति हो जाय, वही कर्म सफल और महा मंगल कारी है।

काहे को कलपत फिरें,
दुखी होत बेकार।
सहजें—सहजें होयगा,
जो रचिया करतार॥

सज्जन साधक धर्म है कि मालिक की करनी पर दृढ़ विश्वास रखते हुए सहज स्वभाव से बड़ी गम्भीरता पूर्वक अपनी जीवन नौका को खेते रहना चाहिए। होता है वही जो मंजूरे-खुदा होता है। फिर व्यर्थ में जीव क्यों कलपे? जीवन की सफलता इसी है कि अपनी ओर से जान बूझकर कभी के हृदय को ठेस न लगावे-प्रेम दे-प्रेम ले। सुख देवे और सुख ही लेवे!

२—करणग्रहः (इन्द्रियों का संयम)

अन्तर्मानस में एक अति मनोहर सुमन वाटिका जीवन काल में लगानी चाहिये। मनुष्य जन्म में यदि इन सुगन्धित कुसुमों की क्यारियों में आनन्द पूर्वक विहार न कर सके तो और जन्म कौनसा होगा? कोई भी तो नहीं। अन्तरात्मा को ही तो पूजा की विधि सिखानी है। उसी ने इन ऊपर गिनाए हुए पुष्पों का आरोपण करना है। इन्हीं को लेकर अपने इष्ट देव महाराज जी की अर्चना

करने से सद्गुरु सतत् प्रसन्न होते हैं और निर्वाण पद में प्रवेश पाने का अधिकार मिल जाता है। यहीं तो विशेषता होती है गुरु पूजा की। इस पथ का निर्माण स्वयं ब्रह्म ही सगुणाकार बनकर किया करते हैं। वे आप ही अपनी जन्म-जन्म से बिछुड़ी हुई आत्माओं को आमंत्रित करते हैं, उन्हें स्वकीय पदारविन्दों में ठौर प्रदान करके सेवा-दर्शन-सत्संग और नामाभ्यास के दुर्लभ साधन करने का सुअवसर देते हैं। सद्गुरु प्रिय शिष्य को पहला फूल "अहिंसा" का समर्पित करते हैं—अति श्रद्धा—विश्वास से।

दूसरा कुसुम है करण—अर्थात् अपनी इन्द्रियों का भली भाँति दमन करना। इन्द्रियों के द्वारा ही तो यह मन हिंसा करता है—जीव हत्या करके अपने को धन्य मानता है कि मैं कितना शूर वीर हूँ। अतः इन इन्द्रियों को वश में करना अनिवार्य है।

काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहङ्कार और मात्सर्य ये छः महाशत्रु हैं भक्ति के मार्ग में बाधा डालने वाले और इनका महोत्तम सेनानी (फील्डमार्शल) है मन। इसी का संकेत पाकर ये सब अपना काम कर पाते हैं।

अब इन्द्रिय रूपी गौएँ अपने विषयों की घास को तो चरना चाहेंगी ही। यह हमें देखना है कि उन्हें उस समय वह खुराक मिलनी चाहिये या नहीं। पशुपाल का कर्त्तव्य है कि वह अपने पशु की भली प्रकार से देखभाल करे। पशु के अधीन वह न होवे अपितु पशु को अपने ज्ञान पूर्वक चरावे। इसी तरह इन्द्रियों को विषयों में बेरोकटोक नहीं जाने दे—उनको उधर से रोकथाम करना एक संकल्प शक्ति वाले साधक का परम कर्त्तव्य है। ऐसा साधक ही अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सकेगा।

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च
नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं
गच्छन्ति कर्हिचित्॥

विषय-अभिलाषी पुरुष चाहे वेदपाठ-त्याग-यज्ञ-नियम और तप इत्यादिक कितने ही कर डाले किन्तु वह कभी भी अपने लक्ष्य की सिद्धि नहीं कर सकेगा। "आचारहीनं न पुनन्ति वेदा" जो सदाचारी नहीं उसका कल्याण, और ग्रंथ तो क्या, स्वयं वेद भी जो ईश्वरीय वाणी हैं, नहीं कर सकते।

जितेन्द्रिय होना गुरुदेवजी की प्रसन्नता पाने के लिये अनिवार्य हो जाता है। इन्द्रियाधीन पुरुष कुछ भी तो नहीं कर सकता। हम किसे समझें कि वह जितेन्द्रिय हो गया है? इसका उत्तर देते हुये मनुस्मृति कहती है—

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा
च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।
न हृष्यति ग्लायति वा
स विज्ञेयो जितेन्द्रियः॥

जो पदार्थों की प्रशंसा सुनकर, उन्हें छूकर, देखकर चखकर अथवा सूँघ कर न तो

प्रसन्न होता है और नहीं दुःखी वही अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण रखने वाला है, ऐसा जानना चाहिये।

मन सम्राट के रथ में पांच ज्ञानेन्द्रिय के अश्व जुड़े है। हमें इन पांचों घोड़ों को अपने वश में करना है। शब्द-स्पर्श-रूप-रस और गन्ध ये है आहार इन पांचों के। एक भी घोड़ा यदि हमारे हाथ में नहीं आता तो बड़ी भारी क्षति हो जाने की सम्भावना रहती है। देखिये मनुस्मृति क्या कहती है:—

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां
यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा,
दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥

यदि पांचों ज्ञानेन्द्रियों में से एक भी इन्द्रिय वश में न आसकी और मन के अनुसार कार्य करती रही तो मनुष्य का जीवन न केवल उस इन्द्रिय के द्वारा अपितु शेष चारों में से भ्रष्ट रहेगा।

इसलिये संयमी पुरुष का सत्संकल्प यह होना चाहिये कि वह रथ के पांचों घोड़ों को वश कर रखे और तभी सद्गुरुदेव जी की अतुल कृपा का पात्र बन सकेगा।

सत्येन्द्र! इसे कहते है साधना करना। बाहर के उपवन से फूल चुने और अपने इष्ट-देव के आगे श्रद्धा-विश्वास सहित धर दिये और समझ लिया कि बस अब तो मेरे महा-प्रभु जी गद्गद हो गये है—किन्तु नहीं श्री प्रभुजी हृदय की पवित्रता चाहते हैं। मन निश्छल होना चाहिये—श्री भगवान राम क्या मधुर वर्णन कथन करते हैं:—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा,
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

तुम्हें और हमें ऐसे दो पुष्प कहीं से बटोर लाने ही है। एक अहिंसा और दूसरा इन्द्रिय निग्रह।

३- भूत दया—

तीसरा फूल है प्राणिमात्र पर दया ही दया। प्रभु का प्यार चाहने वाला पुरुष उसके जीवों के प्रति निष्ठुर और निर्दय कैसे हो सकता है? भक्त तो संसार के बाग में से कांटे बीनने के लिये आया करता है उन्हें बखेरने के लिये नहीं। कांटों की जगह पुष्प शाखा बिछा देता है वह। जिससे सब प्राणी आह्लादित होकर उस पर से निकल जाते है। वह सुख ही सुख बांटा करता है। निर्धन को धन, भूखे को भोजन, प्यासे को पानी, उघाड़े बदन को कपड़े और मुमुक्षुओं को पुस्तकों का दान कर देता है। उसमे योग्यता होगी तो चार अक्षर भी पढ़ा देगा।

सत्येन्द्र—ऐसा कौन होगा जो अपने सुखों को तिलांजली देकर दूसरे के दुःखों को गले लगावे! ये सब कहने की बातें है—या कभी हुई होगी पिछले युगों में—आजकल तो 'पहले आत्मा फिर परमात्मा' इसी का ही प्रचार है।

पूर्णानन्द—नहीं सत्येन्द्र! कलियुग में दयालु पुरुषों का अभाव नहीं। कई दयावान दृष्टि-गोचर हो जाते है।

सत्येन्द्र ! सन्त सद्गुरुदेव जी की शरण इसलिये ली जाती है कि उनके अलौकिक सद्गुण उनकी सत्संगति में रहने से अपने अन्दर में आ जायें वे स्वयं तो प्रेम के अवतार और अहिंसा की साक्षात् मूर्ति होते हैं। तुमने सुना नहीं कि प्राचीन काल में एक ब्रह्मर्षि थे जिनका नाम वशिष्ठ जी था। अपने आश्रम में निवास करते थे।

एक दिन कुशिक वंश में उत्पन्न राजा विश्वामित्र सेना सहित आखेट करने के लिये बाहर निकले। संयोगवश वे उधर ही महर्षि वशिष्ठ जी के आश्रम के पास के जंगल में आ पहुँचे। ऋषि ने उन्हें देखकर उचित समझा कि द्वार पर आये हुए राजा को आमन्त्रित तो करना ही चाहिए उन्होंने एक ब्रह्मचारी को भेजकर राजा विश्वामित्र जी को सेना समेत निमन्त्रण दिया। विश्वामित्र पहले ही ब्रह्मर्षि के तेज और तप के प्रभाव को मानते थे। उन्होंने स्वीकृति दे दी और आश्रम पर दल-बल लेकर पहुँच गये।

ब्रह्मर्षि ने अपनी कामधेनु नन्दिनी के प्रताप से समस्त अतिथियों को आतिथ्य सत्कार से सन्तुष्ट कर दिया। परन्तु कुटिल राजा विश्वामित्र के मन में यह विचार हुआ कि इस कामधेनु पर तो हाथ साफ करना ही चाहिये। उसने इसे हथियाने के लिये भरपूर आक्रमण कर दिया-एक राक्षस को भेजकर महर्षि के सौ पुत्रों का वध भी कर दिया। परन्तु ब्रह्मर्षि वशिष्ठ जी शान्त रहे उनका चित्त अहिंसक रहा।

नन्दिनी कामधेनु थी—उस राजा की घात उस पर न लग सकी। सब ओर से निराश होकर विश्वामित्र अकेले ही अनेक प्रकार के शस्त्र लेकर वशिष्ठ जी पर प्रहार करने के लिये चल दिये किन्तु वशिष्ठ जी के हाथ में कुशा घास का ब्रह्मदण्ड था। फलतः राजा के सारे अस्त्र-शस्त्र उससे टकरा कर नष्ट हो गये।

विश्वामित्र इतने पर भी थके नहीं। उन्होंने घोर तपस्या करके ब्रह्मा जी को प्रसन्न किया और उनसे यही वर मांगा कि "ब्रह्मर्षि वशिष्ठ मुझे राजर्षि न कहकर ब्रह्मर्षि पुकारें"।

ब्रह्माजी ने कहा हाँ—उन्हें प्रसन्न कर लो और वे जिस दिन तुम्हें ब्रह्मर्षि मान लेंगे तभी तुम वैसे हो सकोगे अन्यथा नहीं। तुम तप के बल से ब्रह्मर्षि किसी दशा में भी नहीं बन सकते।

सत्येन्द्र ! गुरु भक्ति के उपवन में रहने से मन में अहिंसा-इन्द्रिय दमन और भूतदया जैसे शुभगुण गुरुमुख के हृदय में धीरे-धीरे स्वयं विकसित होते रहते हैं यह होता है भगवान की पूजा का फल। पूर्ण शान्ति के उपासक वशिष्ठ जी के समीप होते हुये विश्वामित्र के हृदय की सारी कटुता, अभिमान और द्वेष धुल गये। अहिंसा ने हिंसा पर दया ने क्रोध पर विजय प्राप्त करली। गुरु भक्ति के उप-वन में रहने से मन में अहिंसा-इन्द्रिय दमन और भूतदया के सुगन्धित सुमन शिष्य के हृदय में अपने आप ही खिलने लगते हैं। ●

श्री गुरुदेवजी के भावी योग प्रचार कार्यक्रम

३१-१०-८५ से ८-११-८५ तक		योग प्रचार कार्यक्रम चण्डीगढ़ पता— द्वारा प्रहित रामचन्द्र कालिया ३२०१, सेक्टर १५ डी, चण्डीगढ़
१०-११-८५	को	आश्रम के लिए प्रस्थान
१०-११-८५ से १३-११-८५ तक		आश्रम निवास
१४-११-८५	को	झांसी के लिए प्रस्थान
१४-११-८५ से १८-११-८५ तक		योग प्रचार कार्यक्रम झांसी पता— द्वारा लक्ष्मीनारायण व्यायाम शाला, खण्डेराव गेट, झांसी
१९-११-८५	को	मुरैना के लिए प्रस्थान
१९-११-८५ से २४-११-८५ तक		योग प्रचार कार्यक्रम मुरैना पता— द्वारा आर० के० सिंह सिसोदिया जिला शिक्षाधिकारी मुरैना, (म० प्र०)
२४-११-८५ से २९-११-८५ तक		विचाराधीन (निजी कार्यक्रम)
३०-११-८५	को	भिण्ड के लिए प्रस्थान
३०-११-८५ से ४-१२-८५ तक		योग प्रचार कार्यक्रम भिण्ड पता— द्वारा श्री वी० के० सक्सेना किर्लोस्कर डीलर ऊषा कालोनी भिण्ड (म० प्र०)

—※ ब्रह्मचर्य की साधना ※—

"यों तो प्राणिमात्र के लिये ब्रह्मचर्य की साधना अति आवश्यक है। यह साधना ही मनुष्य की भावी उन्नति का आधार बनती है। छात्र-छात्राओं के लिये तो ब्रह्मचर्य के नियम का पालन करना अनिवार्य सा रहता है। बिना इस साधना को पूर्ण किये वे गृहस्थाश्रम में आकर निष्क्रिय और तेजहीन से बनकर नाना प्रकार के कष्ट उठाते हैं। प्रतिकूल इसके जो इस साधना के साधक बने रहते हैं वे विद्या, ऐश्वर्य और कीर्ति के भागी बन जाया करते हैं।"

ये विचार योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने आर्य समाज लालगंज में आयोजित दीक्षान्त समारोह की अध्यक्षता करते हुये व्यक्त किये थे। इस समारोह में संस्कृत के प्रख्यात विद्वान श्री युधिष्ठिर जी मीमांसक व शिविर संचालक श्री धर्मानन्द जी महाराज के भी सारगर्भित विचार भी सुनने को मिले।

SIDDHAYOGA—Regd. No. L. AG. 006 Nov. 1965

प्रेषक कार्यालय :—

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा।

PRINTED MATTER
Book-Post

श्री ....

....

....

....

ज्ञान-विज्ञानात्मक दृष्टि

ज्ञान दो प्रकार का है—एक आध्यात्मिक ज्ञान और दूसरा विज्ञान। ठीक कर्म करने के लिए इन दोनों हाथों की आवश्यकता होती है। आध्यात्मिक ज्ञान का ही अर्थ है अद्वैत। सारी मानव जाति मेरी ही है, ये सब मेरे ही हैं और इन की सेवा करने के लिए ही मुझे विज्ञान की आवश्यकता है इस प्रकार की दृष्टि ही ज्ञान विज्ञानात्मक दृष्टि है।

जब तक यह दृष्टि नहीं, तब तक विज्ञान सुरक्षित नहीं है। यदि विज्ञान के पीछे यह अद्वैत का तत्व-ज्ञान यह एकत्व का तत्वज्ञान, यह प्रेम का तत्वज्ञान न हो तो विज्ञान सारे संसार का नाश कर देगा। केवल विज्ञान से संसार सुन्दर बनने के बजाय भयानक बन जावेगा।

—श्री साने गुरु